श्री सोमसेनाचार्य-विरचित

भक्तामर-महामण्डल-पूजा

हिन्दीपद्यानुवाद, भाषाटीका, अंग्रेजी अनुवाद,
ऋद्धि—मन्त्र—विधि—फल तथा
श्री मानतुङ्ग कृत भक्तामर सहित

सम्पादक
मोहनलाल शास्त्री, काव्यतीर्थ,
जवाहरगंज, जबलपुर ।

प्रकाशक
सरल जैन ग्रन्थ भण्डार
जवाहरगंज, जबलपुर ।

श्री वीर निर्वाण सम्वत्

मूल्य—एक रुपया

पद्यानुवाद-कारक की प्रार्थना

मानतुङ्ग की बेड़ियाँ, टूट गईं थीं सर्व।
भक्तामर के रचे से, हो करके निर्गर्व ॥१॥

इन समान स्तोत्र को, पढ़े-सुने तिरकाल।
ऋद्धि-सिद्धि वसु नव सुनिधि, पावत वह तत्काल ॥२॥

यदि सच्चा श्रद्धान हो, नहीं भ्रमावे योग।
कार्य सफल होंगे सभी, निर्विकार उपयोग ॥३॥

हिन्दी भाषा में कियो, देख मूल का अर्थ।
पढ़ना सोच-विचार कर, नहीं समझना व्यर्थ ॥४॥

स्वर व्यञ्जन मात्रादि की, मुझ से जो हो भूल।
सुधी सुधार पढ़ो सदा, तो पावो भव-कूल ॥५॥

बिरले समझें संस्कृत, भाषा समझें सर्व।
इसी हेतु मैंने लिखा, भाषा में निर्गर्व ॥६॥

मुझको चाह न और कछु, प्रभु की चाहूँ भक्ति।
जब तक यह संसार है, बनी रहे अनुरक्ति ॥७॥

यदि प्रभु इसके विषय में, देना चाहें आप।
तो मेरे जन्मान्तरों, के कट जावें पाप ॥८॥

वह दिन कब आवे प्रभो, छुट जाय संसार।
देना उसे मिला विभो, नमता सौ सौ बार ॥९॥

चल न सके अब लेखिनी, आगे को पद एक।
प्रभु के गुण के लेख को, चाहे अधिक विवेक ॥१०॥

मत घबड़ा री लेखिनी, अब ले ले विश्राम।
होंगे इच्छित सिद्ध सब, जपने से प्रभुनाम ॥११॥

श्री भक्तामर-महाकाव्य-मंडल

पूजा के माड़ने का आकार

ॐ ह्रीं क्लीं
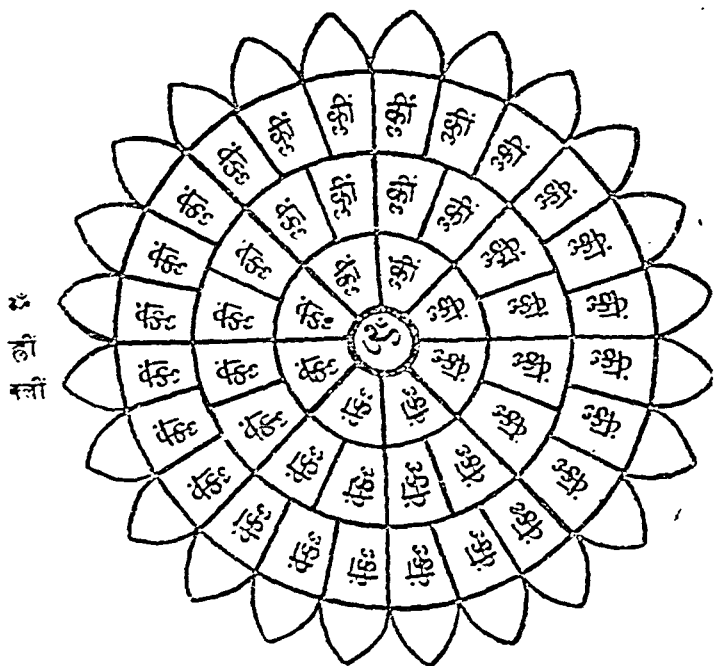
ॐ ह्रीं क्लीं

सर्व सिद्धिदायक मन्त्र

ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं अर्हं श्री वृषभनाथतीर्थङ्कराय नमः

समस्त कार्यों की सिद्धि के लिये प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक उक्त मन्त्र को लवङ्गों से १०८ बार जपना चाहिये।

आवेदन

अखिल जैन समाज में भक्ति-मार्ग को प्रदर्शित करने वाले प्रायः सभी संस्कृत स्तोत्रों में 'आदिनाथ स्तोत्र' ने अधिक आदर, श्रद्धा तथा ख्याति प्राप्त की है। यह स्तोत्र विविध अलङ्कारों से भूषित और सारगर्भित सूक्तियों से सुसज्जित एवं सुमधुर पदों से विभूषित है।

इस स्तोत्र के शब्द-शब्द से भक्तिरस की अविरल धारा प्रवाहित होती है। समूचे स्तोत्र में एक से एक बढ़कर काव्य रचनायें हैं, जो कि पढ़ने वाले का मन बरबस मोह लेती हैं। वाचकवृन्द भक्तिरस में तन्मय होकर धर्म का एक अपूर्व लाभ अनायास ही प्राप्त कर लेता है।

वास्तव में यह ऐसा अनुपम स्तोत्र है जो वीतराग शुद्धात्म-स्वरूप की प्राप्ति की ओर अग्रसर करने में समर्थ है। समाज में यह सौम्य-सुन्दर आदिनाथ स्तोत्र 'भक्तामर' के नाम से अधिक प्रसिद्ध है, इसका कारण है इसका 'भक्तामर' शब्द से प्रारम्भ होना।

इस स्तोत्र की लोक-प्रियता का वर्णन करना सम्भव नहीं है, क्योंकि समाज के प्रायः सभी स्त्री-पुरुष तथा बच्चे तक इसको कंठाग्र रखते हैं और अधिकांश तो इसका पाठ किये बिना या बिना श्रवण किये भोजन तक नहीं करते।

सर्व साधारण के हितार्थ प्रस्तुत पुस्तक में आजकल की खड़ी बोली की कविता में बोधगम्य श्री० पं० कमलकुमार जी शास्त्री कृत सरल पद्यानुवाद तथा लोकप्रिय भाषा में अर्थ दे दिया गया है, जिससे इसकी उपयोगिता अधिक बढ़ गई है। प्रत्येक मूल श्लोक के ऊपर शीर्षक में श्लोक का विषय सूचित कर दिया जाने से भी एक बड़ी कठिनाई का हल हो जाता है।

प्रस्तुत पुस्तक में पहले मूल भक्तामर का संस्कृत श्लोक, उसके नीचे संस्कृत पद्य में अर्थ, पश्चात् पद्य में हिन्दी अनुवाद बाद में ऋद्धि मंत्र-विधि तथा उसका फल फिर भाषा में सरल अर्थ दिया गया है।

श्री मानतुङ्गाचार्य ने अपने ऊपर आया हुआ महान् उपसर्ग इसी स्तोत्र का निर्माण कर दूर किया था। उसके बाद अगणित प्राणियों के संकट निवारण में यह काम आया है। तथा भविष्य में भी यह मानव-समाज को आपत्तियों से बचाने में सहायक होगा।

एक समय की घटना है कि राजा भोज के दरबार के विद्वान कवि कालिदास तथा वररुचि ने साम्प्रदायिकता-वश आचार्यप्रवर मानतुङ्ग को राजाज्ञा से पकड़वा कर ४८ कोठरियों के भीतर बन्द करवा दिया। तीसरे दिन आचार्यश्री ने आदिनाथ स्तोत्र की रचना की, जिसके प्रभाव से वे स्वतः कैदखाने से निर्मुक्त होकर उसके बाहर एक शिलाखंड पर आ विराजे। फिर कई बार उनको कैद किया गया, परन्तु स्तोत्र की अधिष्ठात्री चक्रेश्वरी देवी उनकी बराबर रक्षा करती रही। सन्तरियों ने बहुत प्रयत्न किया, परन्तु स्तोत्र के अपूर्व प्रभाव से वे उन्हें कैद करने में असफल हुए।

राजा भोज ने भी हार स्वीकार कर आचार्यश्री से क्षमा मांगी और उनके तेज पुण्य-प्रभाव से प्रभावित होकर, कल्याणकारी जैनधर्म अङ्गीकार किया। उपस्थित जनता भी जैनधर्म की अनुयायिनी हो गई। कविश्रेष्ठ कालिदास तथा उनके श्वसुर वररुचि को हार माननी पड़ी। परम संतोषी और निर्मोह आचार्यश्री ने दोनों को क्षमा प्रदान की।

इस पुस्तक के अन्त में महामुनि श्री सोमसेन कृत भक्तामर महाकाव्य मंडल पूजा जो कि अभी तक समाज का इस ओर ध्यान न जाने के कारण प्रकाश में नहीं आ सकी थी—जोड़ दी गई है। इससे प्रस्तुत पुस्तक की उपयोगिता कई गुनी अधिक बढ़ गई है। इस पुस्तक में मुनि श्री ने ४८ अर्घों के ४८ श्लोक निर्माण किये हैं, उनको पढ़ने से एक दूसरा भक्तामर महाकाव्य ही पढ़ रहे हैं ऐसा मालूम पड़ने लगता है।

प्राक्कथन

आदिनाथ स्तोत्र जिसका दूसरा नाम भक्तामर भी है जैन समाज में सबसे अधिक प्रचलित भक्तिरस का अपूर्व महाकाव्य है। इसका परिचय देना सूर्य को दीपक दिखाना है। अखिल जैन-समाज में विरला ही कोई ऐसा होगा जो इस स्तोत्र के नाम से परिचित न हो। धर्म पर प्रगाढ़ श्रद्धा रखने वाले बहुत से, ऐसे भी जैन हैं जो तत्त्वार्थसूत्र या भक्तामर का पाठ या श्रवण किये बिना अन्न तक ग्रहण नहीं करते।

हिन्दुओं में गणेशस्तोत्र का जो स्थान है, जैनियों में वही स्थान भक्तामर को प्राप्त है। बहुतसी लौकिक पुस्तकों के पढ़ चुकने के बाद भी जैन बालक जब तक उपर्युक्त दोनों महान् धार्मिक पुस्तकों को नहीं पढ़ लेता है तब तक वह समाज की दृष्टि में बेपढ़ा ही समझा जाता है। वास्तव में बालक-बालिकाओं की योग्यता परखने के लिए दोनों धर्म ग्रन्थों की जानकारी एक कसौटी की तरह है। इतने मात्र से समझ लेना चाहिए कि इस पवित्र पुण्यमय स्तोत्र का कितना अधिक माहात्म्य है और जैन लोग इसे कितने आदर तथा श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं।

इस काव्य-ग्रन्थ ने अपने जिन अपूर्व अनुपम अद्वितीय गुणों के कारण महान् माहात्म्य, अमर्यादित प्रचार और विशेषरूप से ख्याति प्राप्ति की है, वह किसी से भी छिपी हुई नहीं है। फिर भी हमारा सुषुप्त समाज समीचीन संस्कृतविद्या की जानकारी के अभाव में इसके सर्वोत्तम विविध गुणों की जानकारी से वंचित होता जाता है।

वह यह नहीं समझ पाता कि ४८ श्लोक वाले इस छोटे से काव्य-ग्रन्थ में ऐसा कौनसा अमृत भरा हुआ है, जिसे पान करके न केवल जैन अपितु इस पर विमुग्ध हुए जैनेतर विद्वानों तक ने इसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की है।

जैन समाज के अधिकांश संस्कृत-विद्या-विहीन नर-नारियों और बालकों को उसी अपूर्व अमृत का रसास्वादन कराने की कल्याणमयी कामना से हमारे समान अन्य भी अनेक जैन विद्वान् लेखकों और सुकवियों ने इस काव्य-ग्रन्थ की विविध टीकाएं और अनुवाद करके साहित्यश्री में अभिवृद्धि की है।

इस कृति से संस्कृतानभिज्ञ पाठक-पाठिकाओं को वही रसास्वाद और आनन्दानुभव होगा जो मूल-ग्रन्थ के पढ़ने वाले संस्कृतज्ञों को होता है। प्रचार की दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाने के लिए इसमें ऋद्धि-मंत्र-विधि और उसके फल के साथ-साथ महामुनि सोमसेन कृत 'भक्तामर महाकाव्य मंडल पूजा' भी जोड़ी है। यह पूजा अभी तक की प्रकाशित तमाम भक्तामर संस्कृत पूजाओं से भिन्न है।

श्री रतनलाल जी डिब्रूगढ़कृत अंग्रेजी का अनुवाद दे देने से इस पुस्तक की उपादेयता और भी बढ़ गई है।

आभार प्रदर्शन

१—इस पुस्तिका में हिन्दी पद्यानुवाद श्रीमान् पं० कमलकुमार जी शास्त्री, खुरई (सागर) रचित दिया गया है।

२—अंग्रेजी अनुवाद श्रीमान् बा रतनलाल जी सा०, डिब्रूगढ़ (आसाम) द्वारा लिखि दिया गया है।

३—इस पुस्तक में प्रकाशित 'अखण्डपाठविधि' श्रीमान् पं० घनश्यामदास जी शास्त्री इन्दौर द्वारा लिखित वा सुसज्जित है।

उक्त तीनों सज्जनों ने अपनी-अपनी कृतिया प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान कर हमें अनुगृहीत किया है, एतदर्थ हम आपके आभारी हैं।

अखण्ड पाठ की विधि

आत्मा को परमात्मा वनाने के लिये यह आवश्यक है कि परमात्मा के पवित्र गुणों का वारम्वार चिन्तन, मनन वा स्तवन कर उन्हें आत्मा में व्यक्त और विकसित करने का प्रयास किया जावे।

इसी आन्तरिक भावना से भक्तामर स्तवन द्वारा परमात्मा की आराधना से आत्मविकाश की परिपाटी जैनसम्प्रदाय में शताब्दियों से प्रचलित है।

जगद्धितैषी, वीतराग सर्वज्ञ जिनेश के समक्ष भक्तामरस्तोत्र के "अखण्ड पाठ" का क्रम या विधि इस प्रकार है।

पाठ प्रारम्भ होने के एक दिन पहिले एक वड़े तखत पर पंचवर्ण तन्दुलों से इसी पुस्तक में पेज नं० ४ पर अङ्कित मण्डल (माड़ना) वनाया जाय।

दूसरे दिन प्रात: स्नान कर धौत वस्त्र पहिनकर पूजन सामग्री तैयार कर माड़ने के ऊपर (प्रारम्भ में) उत्तर या पूर्व मुख उच्चासन पर सुन्दर सिंहासन में श्री आदिनाथ भगवान की वड़ी और मझौल दो मूर्तियाँ तथा सामने एक उच्चासन पर श्री विनायक (सिद्ध) यन्त्र स्थापित किया जावे। पश्चात् मङ्गल और शोभा के हेतु अष्ट मङ्गल-द्रव्य, छत्रत्रय और अष्टप्रातिहार्य यथास्थान स्थापित किये जावें।

सिंहासन से कुछ नीचे एक छोटे वाजौटे पर प्रतिमा की वांई ओर एक अखण्ड दीपक (जो कार्यसमाप्ति पर्यन्त वरावर जलता रहे) प्रज्वलित किया जावे। पश्चात् वादित्रनाद हो चुकने के अनन्तर उपस्थित सभी जनता उच्चस्वर से 'जैनधर्म की जय' 'आदिनाथ भगवान की जय' 'भक्तामर महामण्डल विधान की जय' वोलें। पश्चात् पद्यान्त में पुष्पप्रक्षेप करते हुये मङ्गलाचरण वा मङ्गलाष्टक पढ़ा जावे।

तदनन्तर परिणामशुद्धि, रक्षासूत्रबन्धन, तिलककरण, रक्षा-विधान, दिग्वन्धन कर मङ्गलकलश स्थापित करना चाहिये।

मङ्गलकलश में हल्दी, सुपारी, पुष्प, नकद १।) रखकर ऊपर सीधा श्रीफल रखकर पीतवस्त्र और पञ्चवर्ण सूत से उसे सुन्दर रीति से बांधना चाहिये। उसके भीतर प्रासुक जल भर कर उसमें पर्याप्त मात्रा में लवंग-चूर्ण डालना चाहिये। यह मङ्गलकलश प्रतिमा की बांई ओर एक छोटे चौके पर स्थापित करना चाहिये। पश्चात्

विधिपूर्वक जलधारा (अभिषेक) और शान्तिधारा कर २४, ४८, या ७२ घंटे तक 'अखण्ड पाठ' करने का सङ्कल्प कर जयध्वनि-पूर्वक श्रीभक्तामरस्तोत्र का पाठ प्रारम्भ करना चाहिये।

यह अखण्ड पाठ प्रतिमा के सामने बैठकर समान स्वर में एकस्थल पर अनेक व्यक्ति संकल्पित समय तक करें। यदि बीच में पाठ-कर्त्ता बदले जावें तो जब तक नवीन पाठकर्त्ता पाठ-प्रारम्भ न कर दे तब तक पूर्व पाठकर्त्ता अपना स्थान नहीं छोड़ें।

संकल्पित समय पूरा होने पर मङ्गलाष्टक तथा शान्तिपाठ पढ़ कर चौकी पाटे उठाकर उचित स्थान पर टेबिल जमाकर पुनः भगवान का अभिषेक एवं यन्त्र की शान्तिधारा की जाय। पश्चात्

विधिपूर्वक 'नित्यपूजा' कर श्री भक्तामर महामण्डल पूजा (विधान) किया जावे। पूजन समाप्ति के बाद शान्तिकलशाभिषेक (पुण्याहवाचन) शान्ति-विसर्जन, आरती, परिक्रमा वगैरह यथाविधि किये जावें। यदि पाठके साथ जाप्य भी किया गया हो तो विधिपूर्वक हवन भी किया जावे।

आवश्यक सामग्री

हल्दीगांठ, सुपारी, श्रीफल, पीलेमरसों, पीतवस्त्र, पञ्चवर्णसूत, शुद्ध घृत, रुई, दीपक, माचिस, अगरबत्ती, लवङ्ग, शुद्ध धूप, धूपदान, फूलमालाएं, नकद रुपया, चुवन्नियां, मङ्गलकलश, चौकी, पाटे, आसनी, दीपक बड़े, दीपक छोटे, कंडील, अष्टद्रव्य, बनयान, नवीन धोती दुपट्टे, छन्ना, अंगोछी, रूमाल, पञ्चवर्ण चांवल, तखत, अष्ट-मङ्गलद्रव्य, अष्टप्रातिहार्य, छत्रत्रय, पाठ की पुस्तकें।

मङ्गलाचरण

मङ्गलं भगवान् वीरो, मङ्गलं गौतमो गणी ।
मङ्गलं कुन्दकुन्दार्यो, जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम् ॥१॥

नमः स्यादर्हद्भ्यो, विततगुणराड्भ्यस्त्रिभुवने ।
नमः स्यात् सिद्धेभ्यो, विगतगुणवद्भ्यः सविनयम् ॥
नमो ह्याचार्येभ्यः, सुरगुरुनिकारो भवति यैः ।
उपाध्यायेभ्योऽथ, प्रवरमतिधृद्भ्योऽस्तु च नमः ॥२॥

नमः स्यात् साधुभ्यो, जगदुदधिनौभ्यः सुरुचितः ।
इदं तत्त्वं मन्त्रं, पठति शुभकार्ये यदि जनः ॥
असारे संसारे, तव पदयुग–ध्यान–निरतः ।
सुसिद्धः सम्पन्नः स हि भवति दीर्घायुररुजः ॥३॥

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः, सिद्धाश्च सिद्धीश्वराः ।
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः, पूज्या उपाध्यायकाः ॥
श्रीसिद्धान्तसुपाठका मुनिवरा, रत्नत्रयाराधकाः ।
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं, कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥४॥

१—अनुष्टुप्, । २, ३—शिखरिणी । शार्दूलविक्रीडित ।

अथ मङ्गलाष्टकम्

(शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः)

श्रीमन्नम्र—सुरासुरेन्द्र—मुकुट—प्रद्योतरत्न—प्रभा—
भास्वत्पादनखेन्दवः प्रवचनाम्भोधीन्दवः स्थायिनः ।
ये सर्वे जिनसिद्धसूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः,
स्तुत्या योगिजनैश्च पञ्चगुरवः, कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥१॥
नाभेयादिजिनाः प्रशस्तवदनाः, ख्याताश्चतुर्विंशतिः,
श्रीमन्तो भरतेश्वरप्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादश ॥
ये विष्णुप्रतिविष्णुलाङ्गलवराः, सप्तोत्तरा विंशतिः,
त्रैकाल्ये प्रथितास्त्रिपष्ठिपुरुषाः कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥२॥
ये पञ्चौपधिऋद्धयः श्रुततपो-वृद्धि गताः पञ्च ये,
ये चाष्टाङ्गमहानिमित्तकुशलाश्चाष्टौविधाश्चारिणः ॥
पञ्चज्ञानवरास्त्रयोऽपि बलिनो, ये बुद्धिऋद्धीश्वराः ।
सप्तैते सकलार्चिता मुनिवराः, कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥३॥
ज्योतिर्व्यन्तरभावनामरगृहे, मेरौ कुलाद्रौ स्थिताः ।
जम्बूशाल्मलिचैत्यशाखिपु तथा, वक्षाररूप्याद्रिपु ॥
इप्वाकारगिरौ च कुण्डलनगे, द्वीपे च नन्दीश्वरे ।
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहाः, कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥४॥
कैलाशो वृपभस्य निर्वृतिमही, वीरस्य पावापुरी ।
चम्पा वा वसुपूज्यसज्जिनपतेः सम्मेदशैलोऽर्हताम् ॥

शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरी, नेमीश्वरस्यार्हताम् ।
निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवाः, कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥५॥

सर्पो हारलता भवत्यसिलता, सत्पुष्पदामायते ।
सम्पद्येत रसायनं विषमपि, प्रीतिं विधत्ते रिपुः ॥
देवा यान्ति वशं प्रसन्नमनसः, किं वा बहु ब्रूमहे ।
धर्मादेव नभोऽपि वर्षति तरां, कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥६॥

यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां, जन्माभिषेकोत्सवो,
यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो, यः केवलज्ञानभाक् ।
यः कैवल्यपुरप्रवेशमहिमा, सम्पादितः स्वर्गिभिः,
कल्याणानि च तानि पञ्च सततं, कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥७॥

आकाशं मूर्त्यभावा–दघकुलदहना–दग्निरुर्वी क्षमाप्त्या ।
नैःसङ्गाद्वायुरापः प्रगुणशमतया, स्वात्मनिष्ठैः सुयज्वा ॥
सोमः सौम्यत्वयोगा-द्रविरिति च विदुस्तेजसः सन्निधानाद्,
विश्वात्मा विश्वचक्षु-र्वितरतु भवतां, मङ्गलं श्रीजिनेशः।८।

इत्थं श्रीजिनमङ्गलाष्टकमिदं, सौभाग्यसम्पत्करं ।
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थङ्कराणां मुखाः ।
ये शृण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनैः, धर्मार्थकामान्विता ।
लक्ष्मी र्लभ्यत एव मानवहिता, निर्वाणलक्ष्मीरपि ॥९॥

॥ इति मङ्गलाष्टकम् ॥

॥ मङ्गलकलश स्थापना ॥

ओम् अद्य भगवतो महापुरुषस्य श्रीमदादिब्रह्मणो मतेऽस्मिन् विधीयमाने श्रीभक्तामरस्तोत्राखण्डकीर्तनकर्मणि अमुकवीरनिर्वाणसम्वत्सरे अमुकमासे, अमुकतिथौ, अमुकदिने, प्रशस्तलग्ने, भूमिशुद्धयर्थं, शान्त्यर्थं, पुण्याहवाचनार्थं नवरत्न-गन्धपुष्पाक्षतबीजपूरादिशोभितं शुद्धप्रासुकतीर्थ-जलपूरितं मङ्गलकलशस्थापनं करोमि श्री क्ष्वी क्ष्वीं हं सः स्वाहा।

इस मंत्र को पढ़ कर शास्त्र जी के उत्तर कोने में जल, अक्षत, पुष्प, हलदी, सुपारी और १) रुपया सहित मङ्गलकलश स्थापित किया जावे। इस कलश को पुण्याहवाचन कलश भी कहते हैं।

ओं ह्रां णमो अरिहंताणं ह्रां पूर्वदिशासमागत-विघ्नान् निवारय निवारय मां रक्ष रक्ष स्वाहा।

इस मन्त्र को पढ़कर पूर्व दिशा की ओर पीले सरसों क्षेपे।

ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं ह्रीं दक्षिणदिशासमागत-विघ्नान् निवारय निवारय मां रक्ष रक्ष स्वाहा।

इस मन्त्र को पढ़कर दक्षिण दिशा में पीले सरसों क्षेपे।

ओं ह्रूं णमो आयरीयाणं ह्रूं पश्चिमदिशा-समागतान् विघ्नान् निवारय निवारय मां रक्ष रक्ष स्वाहा।

यह मन्त्र पढ़कर पश्चिम दिशा में पीले सरसों क्षेपे।

ओं ह्रौं णमो उवज्झायाणं ह्रौं उत्तरदिशासमागत-विघ्नान् निवारय निवारय मां रक्ष रक्ष स्वाहा।

यह मन्त्र पढ़कर उत्तर दिशा की ओर पीले सरसों क्षेपे।

ओं ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं ह्रः सर्वदिशासमागत

विघ्नान् निवारय निवारय मां रक्ष रक्ष स्वाहा।

यह मन्त्र पढ़कर सर्व दिशाओं में पीले सरसों क्षेपे।

परिणाम-शुद्धि-मन्त्र

विधिं विधातुं यजनोत्सवेऽहं, गेहादिमूर्च्छामपनोदयामि।
अनन्यचित्ताकृतिमादधामि, स्वर्गादिलक्ष्मीमपि हापयामि।

यह पद्य पढ़कर प्रतिज्ञा करे कि मैं इस विधान पर्यन्त व्यापारादि की चिन्ता छोड़ एकाग्रता से कार्य करूँगा।

रक्षासूत्रबन्धन मन्त्र

मङ्गलं भगवान्वीरो, मङ्गलं गौतमो गणी।
मङ्गलं कुन्दकुन्दाद्या, जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम्॥

ओं ह्रीं पञ्चवर्णसूत्रेण करे रक्षाबन्धनं करोमि।

तिलक-मन्त्र

ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः मम
सर्वाङ्गशुद्धिं कुरु कुरु स्वाहा।

यह मन्त्र पढ़कर अङ्गशुद्धि के लिये तिलक लगाना चाहिये।

रक्षा-मन्त्र

ओं नमोऽर्हते सर्वं रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा।

पीले सरसों और पुष्पों को इस मन्त्र से सात बार मन्त्रित कर फूंक देकर सर्व पात्रों पर छिटकना चाहिये।

सङ्कल्प मन्त्र

ओं ह्रीं मध्यलोके जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे......
......देशे.........नगरे.........चैत्यालये.......... श्रीवीरनिर्वाण-सम्वत्सरे..........मासे ....पक्षे ....तिथौ शुभ-

वेलायां परमार्थानां देवशास्त्रगुरूणां सन्निधौ परमधार्मिक श्रावकाणां विदुषाम्त्रा सन्निधौ शान्तिकपौष्टिकनिखिल-कार्य-सिद्धयर्थम् अमुकवासरादारम्य अमुकवासरपर्यन्तं होरा........ पर्यन्तं महामहिमसमधिष्ठितस्य अचिन्त्यामेयफलप्रदस्य श्री भक्तामरस्तोत्रस्याखण्डपाठं करिष्यामहे ।

जलधारा, अभिषेकपाठः

श्रीमन्नतामरशिरस्तटरत्नदीप्ती—
तोयावभासिचरणाम्वुजयुग्ममीशम् ।
अर्हन्तमुन्नतपदप्रदमाभिनम्य,
त्वन्मूर्तिपूद्यदभिषेकविधिं करिष्ये ॥१॥

अथ पौर्वाह्लिकमाध्याह्लिकापराह्लिकदेववन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजास्तववन्दनासमेतं श्रीपञ्चमहागुरुभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम् । इसको पढ़कर ६ वार णमोकार मन्त्र की जाप देना चाहिये । प्रातःकाल के समय पौर्वाह्लिक, मध्यकाल के समय माध्याह्लिक और अपराह्ल के समय आपराह्लिक बोलना चाहिये ।

याः कृत्रिमास्तदितराः प्रतिमा जिनस्य,
शक्रादयः सुरवराः स्नपयन्ति भक्त्या ।
सद्भावलब्धिसमयादिनिमित्तयोगा—
त्तत्रैवमुज्ज्वलधिया कुसुमं क्षिपामि ॥२॥

इति अभिषेकप्रतिज्ञायै चतुष्पादे पुष्पाञ्जलिं क्षिपामः ।

श्रीपीठक्लृप्ते विततार्क्षतौघे, श्रीप्रस्तरे पूर्णशशाङ्ककल्पे ।
श्रीवर्तके चन्द्रमसीति वार्तां, सत्यापयन्तीं श्रियमालिखामि ।

ओं ह्रीं अर्हं श्रीलेखनं करोमि ।

कनकादिनिभं क्रमं, पावनं पुण्यकारणम् ।
स्थापयामि परं पीठं, जिनस्नानाय भक्तितः ॥४॥

ओं ह्रीं उच्चचतुष्पादे कमनीयस्थाल्यां सिंहासनस्थापनम् ।

भृङ्गार—चामर—सुदर्पण—पीठ—कुम्भ-
ताल—ध्वजा—तप—निवारक—भूषिताग्रे ।
वर्धस्व नन्द जय पाठपदावलीभिः,
सिंहासने ! जिन भवन्तमहं श्रयामि ॥५॥

वृषभादिसुवीरान्तान्, जन्माप्तौ जिष्णुचर्चितान् ।
स्थापयाम्यभिषेकाय, भक्त्या पीठे महोत्सवैः ॥६॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीधर्मतीर्थाधिनाथ ! भगवन्निह पांडुकशिलपी । सिंहासने तिष्ठ तिष्ठ । इति प्रतिमास्थापनम् । घण्टानादपूर्वकं जय-घोषश्चेति । जहां तक हो प्रतिमा दिग्नानाथ भगवान की ही स्थापित की जाय ।

श्रीतीर्थकृत्स्नपन-वर्यविधौ सुरेन्द्रः,
क्षीराब्धिवारिभिरपूरयदर्थ—कुम्भान् ।
तांस्तादृशानिव विभाव्य यथार्हणीयान्
संस्थापये कुसुमचन्दनभूषिताग्रान् ॥७॥

शातकुम्भीयकुम्भौघान् क्षीराब्धेस्तोयपूरितान् ।
स्थापयामि जिनस्नाने, चन्दनादिसुचर्चितान् ॥८॥

ओं ह्रीं स्वस्तये चतुःकोणेषु चतुःकलशस्थापनं करोमि ।
चौकी पर चारों दिशाओं में चार कलश स्थापित किये जाव ।

आनन्द—निर्भर—सुर—प्रमदादिगानै—
वादित्रपूर—जयशब्द—कलप्रशस्तैः ।
उद्गीयमान—जगतीपति—कीर्तिमेनां,
पीठस्थलीं वसुविधार्चनयोल्लसामि ॥६॥

ॐ ह्रीं श्रीस्नपनपीठायार्घम् । वाद्यघोषणम् । जयशब्दोच्चारणम् ।

कर्मप्रबन्धनिगडैरपि हीनताप्तं,
ज्ञात्वापि भक्तिवशतः परमादिदेवम् ।
त्वां स्वीयकल्मषगणोन्मथनाय देव,
शुद्धोदकैरभिनयामि नयार्थतत्त्वम् ॥१०॥

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं क्ष्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पवित्रतरजलेन जिनमभिषेचयामि स्वाहा । इत्युच्चार्य शुद्धजलेन स्नपनं कार्यम् ।

तीर्थोत्तमभवै र्नीरैः, क्षीरवारिधि—रूपकैः ।
स्नपयामि सुजन्माप्तान्, जिनान्सर्वार्थसिद्धिदान् ॥११॥

दूरावनम्र—सुरनाथ—किरीटकोटी—
संलग्नरत्नकिरणच्छवि—धूसरांघ्रिम् ।
प्रस्वेदतापमल—मुक्तमपि प्रकृष्टै—
र्भक्त्या जलै जिनपतिं बहुधाऽभिषिञ्चे ॥१२॥

अथाद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे..........देशे.........नगरे.........मासे शुभे.........पक्षे ....तिथौ.........वासरे.........जिनमन्दिरे पूजनकारकश्रोतृगणतापसार्यिकाश्रावक-श्राविकाणां

सकलकर्मक्षयार्थं श्रीवृषभादिचतुर्विंशतितीर्थङ्कर-परमदेवान् जलेन अभिषिञ्चे ॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तान् जलेन स्नपयामि ।

नोट :—इस श्लोक और मन्त्र को एक जपमाला द्वारा १०८ वार पढ़ते हुये क्रमशः १०८ कलशों द्वारा जलाभिषेक करे । अर्थात् एक वार श्लोक और मन्त्र पढ़कर १ कलश की धारा छोड़े । इसी प्रकार १०८ वार किया जावे ।

पानीयचन्दनसदक्षतपुष्पपुञ्ज—
नैवेद्य-दीपक-सुधूप-फलव्रजेन ।
कर्माष्टकक्रथनवीर—मनन्तशक्ति,
संपूजयामि महसा महसां निधानम् ॥१३॥

ओं ह्रीं अभिषेकान्ते वृषभादिवीरान्तेभ्योऽर्घम् ।

हेतीर्थपा निजयशोधवलीकृताशाः,
सिद्धौषधाश्च भवदुःखमहागदानाम् ।
सद्भव्यहृज्जनित—पङ्कजबन्धकल्पा,
यूयं जिनाः सततशान्तिकरा भवन्तु ॥१४॥

इत्युक्त्वा शान्त्यर्थं पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

नत्वा परीत्य निजनेत्रललाटयोश्च,
व्याप्तं क्षणेन हरतादघसंचयं मे ।
शुद्धोदकं जिनपते ! तव पादयोगाद्,
भूयाद् भवातपहरं धृतमादरेण ॥१५॥

मुक्तश्रीवनिता—करोदकमिदं, पुण्याङ्कुरोत्पादकम् ।
नागेन्द्रत्रिदशेन्द्र-चक्रपदवी—राज्याभिषेकोदकम् ।
सम्यग्ज्ञान—चरित्रदर्शनलता—संवृद्धिसम्पादकम्
कीर्तिश्रीजयसाधकं तव जिन ! स्नानस्य गन्धोदकम् ॥१६॥

इति प्रदक्षिणां नमस्कारं च कृत्वा जिनचरणोदकं शिरसि धारयामि । इन श्लोकों को पढ़कर श्रीजिनेश का चरणोदक स्वयं लेकर दूसरों को भी देवे ।

नत्वा मुहु—र्निजकरैरमृतोपमेयैः,
स्वच्छै र्जिनेन्द्र ! तव चन्द्र-करावदातैः ।
शुद्धांशुकेन विमलेन नितान्तरम्ये
देहे स्थितान्जलकणान्परिमार्जयामि ॥१८॥

ओं ह्रीं अमलांशुकेन जिनबिम्बमार्जनं करोमि ।

स्नानं विधाय—भवतोऽष्टसहस्रनाम्ना—
मुच्चारणेन मनसो वचसो विशुद्धिम् ।
आदातुमिष्टिमिन ! तेऽष्टतयीं विधातुं,
सिंहासने विधिवदत्र निवेशयामि ॥१९॥

इति सहस्रनामस्तोत्रं तदंशं वा पठित्वा जिनबिम्बं सिंहासने स्थापयित्वा पूजनप्रतिज्ञानाय पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

जलगन्धाक्षतैः पुष्पैश्चरुदीपसुधूपकैः ।
फलैरर्घैं जिनमर्चे जन्मदुःखापहानये ॥२०॥

ओं ह्रीं श्रीसिंहासन (पीठ) स्थितजिनायार्घम् ।

इमे नेत्रे जाते, सुकृतजलसिक्ते सफलिते
ममेदं मानुष्यं, कृतिजनगणादेयमभवत् ।
मदीयाद् भल्लाटा—दशुभवसुकर्माटिनमभूत्
सदेदृक् पुण्यौघो, मम भवतु ते पूजनविधौ ॥२१॥

इतीष्टप्रार्थनां कृत्वा पुष्पञ्जलिं क्षिपेत् ।

सूचना—प्रतिमाजी को यथास्थान स्थापित करने के बाद यदि शान्तिधारा पाठ पढ़ना हो तो प्रतिमा जी के साथ लाये हुये विनायक यन्त्र पर आगे का मन्त्र पढ़ते हुये झारी से अखण्ड धारा देना चाहिये ।

श्री शान्तिधारा पाठ

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते ।

ओंह्रीं क्रौं अस्माकं पापं खण्ड खण्ड, हन हन, दह दह, पच पच, पाचय पाचय, अर्हन् झं झ्वीं क्ष्वीं हं सः झं वं ह्वः पः हः क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षं क्षः, क्ष्वीं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रैं ह्रों ह्रौं ह्रः । द्रां द्रीं द्रावय द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते ठः ठः ।

अस्माकं श्रीरस्तु, वृद्धिरस्तु, तुष्टिरस्तु, पुष्टिरस्तु शान्तिरस्तु, कान्तिरस्तु, कल्याणमस्तु स्वाहा । एवम्-अस्माकं कार्यसिद्ध्यर्थं, सर्वविघ्ननिवारणार्थं, श्रीमद्भ-

गवदर्हत्सर्वज्ञपरमेष्ठिपरमपवित्राय नमोनमः। श्रीशान्ति-भट्टारकपादपद्मप्रसादात् अस्माकं सद्धर्म-श्रीबलायुरारग्यैश्वर्याभिवृद्धिरस्तु। स्वशिष्यपरशिष्यवर्गाः प्रसीदन्तु नः।

ओं श्रीवृषभादिवर्द्धमानपर्यन्ताश्चतुर्विंशत्यर्हन्तो भगवन्तः सर्वज्ञाः परममाङ्गल्यनामधेयाः इहामुत्र च सिद्धिं तन्वन्तु। सद्धर्मकार्येषु इहामुत्र च सिद्धिं प्रयच्छन्तु नः।

ओं नमोऽर्हते भगवते, श्रीमते श्रीमत्पार्श्वतीर्थंकराय द्वादशगणपरिवेष्ठिताय, शुक्लध्यानपवित्राय, सर्वज्ञाय, स्वयम्भुवे, सिद्धाय, बुद्धाय, परमात्मने, परमसुखाय, त्रैलोक्यमहिताय, अनन्तसंसारचक्रप्रमर्दनाय, अनन्तज्ञानदर्शनवीर्यसुखास्पदाय, सिद्धाय, बुद्धाय, त्रैलोक्यवशङ्कराय, सत्यज्ञानाय, सत्यब्रह्मणे, ऋष्यार्यिकाश्रावकश्राविकाप्रमुखचतुस्सङ्घोपसर्गविनाशाय, घातिकर्मविनाशाय, अघातिकर्मविनाशाय, अपवादम् अस्माकं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। मृत्युं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। अतिकामं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। रतिकामं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। क्रोधं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। अग्निं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। सर्वशत्रुं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। सर्वोपसर्गं छिन्द छिन्द, भिन्द २। सर्वविघ्नं छिन्द छिन्द, भिन्द २। सर्वभयं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। सर्वराजभयं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। सर्वचोरभयं

छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। सर्वदुष्टभयं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। सर्वमृगभयं छिन्द छिन्द, भिन्द २। सर्वपरमन्त्रं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। सर्वमात्मघातभयं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। सर्वशूलभयं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। सर्वक्षयरोगं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। सर्वकुष्ठरोगं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। सर्वज्वरमारिं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। सर्वगजमारिं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। सर्वाश्वमारिं छिंद २ भिंद २। सर्वगोमारिं छिन्द २, भिन्द २। सर्वमहिषमारिं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। सर्वधान्यमारिं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द, सर्ववृक्षमारिं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। सर्वगुल्ममारिं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। सर्वपत्रमारिं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। सर्वपुष्पमारिं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। सर्वफलमारिं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। सर्वराष्ट्रमारिं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। सर्वदेशमारिं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। सर्वविषमारिं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। सर्वक्रूररोगं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। सर्ववेतालशाकिनीभयं छिन्द छिन्द, भिन्द २। सर्ववेदनीयं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। सर्वमोहनीयं छिन्द छिन्द, भिन्द भिन्द। ओं चक्रविक्रमतेजोबलशौर्यशांतिं कुरु कुरु। सर्वजनानन्दनं कुरु कुरु। सर्वभव्यानन्दनं कुरु कुरु। सर्वगोकुला-

नन्दनं कुरु कुरु। सर्वग्रामनगरखेटखर्वटमण्डपपत्तनद्रोणामुखसहानन्दनं कुरु कुरु। सर्वलोकानन्दनं कुरु कुरु। सर्वदेशानन्दनं कुरु कुरु। सर्वयजमानानन्दनं कुरु कुरु। व्याधिव्यसनवर्जितम् अभयक्षेमारोग्यं स्वस्तिरस्तु, शान्तिरस्तु, शिवमस्तु, कुलगोत्रधनं धान्यं सदास्तु। चन्द्रप्रभ-पुष्पदन्त–शीतल–वासुपूज्य–मल्लि–मुनिसुव्रत-नेमिनाथ–पार्श्वनाथवर्धमानाः प्रसीदन्तु। इत्यनेन मन्त्रेण शान्तिधाराविधानम्।

यत्सुखं त्रिषु लोकेषु, व्याधिव्यसनवर्जितं।
अभयं क्षेममारोग्यं, स्वस्तिरस्तु विधायिने॥

श्रीशान्तिरस्तु! शिवमस्तु! जयोऽस्तु! नित्यमारोग्यमस्तु! अस्माकं पुष्टिरस्तु! समृद्धिरस्तु! कल्याणमस्तु! सुखमस्तु! अभिवृद्धिरस्तु! कुलगोत्रधन सदास्तु! सद्धर्मश्रीबलायुरारोग्यैश्वर्याभिवृद्धिरस्तु।

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं असिआउसा
सर्वशान्ति कुरुत कुरुत स्वाहा।

आयुर्वल्लीविलासं सकल-सुख-फलैर्द्राघयित्वाश्वनल्पं।
धीरं हीरं शरीरं, निरुपममुपनयत्वातनोत्वच्छकीर्तिम्॥
सिद्धि वृद्धि समृद्धि, प्रथयतु तरणिस्फूर्यदुच्चैः प्रतापं।
कांति शांति समाधि, वितरतु जगतामुत्तमा शान्तिधारा॥

इति शान्तिधारापाठः समाप्तः
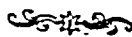
श्रीमन्महामुनि–सोमसेनप्रणीता

श्री भक्तामर-महाकाव्य-मण्डल पूजा

ओं जय जय जय । नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु ।

आर्या–छन्द

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ।।

ओं ह्रीं अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नमः (पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

चत्तारि मंगलं

(१) अरिहंता मंगलं (२) सिद्धा मंगलं (३) साहू मंगल
(४) केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ।

चत्तारि लोगुत्तमा

(१) अरिहंता लोगुत्तमा (२) सिद्धा लोगुत्तमा (३) साहू लोगुत्तमा
(४) केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि

(१) अरिहंते सरणं पव्वज्जामि (२) सिद्धे सरणं पव्वज्जामि
(३) साहू सरणं पव्वज्जामि (४) केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं
पव्वज्जामि ।

ओं नमो हंते स्वाहा (पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

नोट–इत्यादि 'नित्यपूजा' नामक पुस्तक में प्रकाशित 'अपवित्रः पवित्रो वा' से लेकर सिद्धपूजा पर्यन्त नित्यपूजा करने के पश्चात् यह 'श्रीभक्तामर महाकाव्य मण्डल पूजा' प्रारम्भ करना चाहिये ।

पूर्व-पीठिका

श्रीमन्त-मानम्य जिनेन्द्रदेवं, परं पवित्रं वृषभं गणेशं ।
स्याद्वादवारांनिधिचन्द्रविम्वं, भक्तामरस्यार्चनमात्मसिद्धचै ।
वक्ष्ये सुवोरं करुणार्णवं च, श्रीभूषणं केवलज्ञानरूपं ।
ग्रलक्ष्यलक्ष्यं प्रणमाम्यलं वै, भक्तामरं सिद्धवधूप्रियं वै ॥

ग्रादौ भव्यजनेनैवं, गत्वा चैत्यालयं प्रति ।
नन्तव्यः परया भक्त्या, सर्वज्ञः शुद्धलक्षणः ॥
ततः सद्गुरु—मानम्य, विनयानत—चेतसा ।
प्रार्थना सुकृता भव्यैः, पूजायै भावशुद्धितः ॥
दीयतां सुगुरो ! ग्राज्ञा, पूजां कर्तुं शुभां वरं ।
इत्युक्ते गुरुणाभाणि, विधिं भंक्तामरस्य वै ॥
श्रीखण्डागुरु — कर्पूर, नारिकेल - फलानि च ।
प्रचुराक्षत -- पुष्पौघा, नक्षताश्चरुसञ्चयान् ॥
मेलयित्वा प्रमोदेन, चद्रोपमध्वजादिकान् ।
दीपान् धूपान् महावाद्य--, गीतरावविराजितान् ॥
तोरणै मंणि - सन्नद्धै--, रुज्ज्वलै - श्चामरैस्तथा ।
मण्डपैः पञ्चवर्णैश्च, द्रव्यै मंङ्गलसूचकैः ॥
वसुदेव — मिति कोष्ठे, वर्तुलाकार - मण्डिते ।
रचयेद् वेदिकां तत्र, श्रीजिनार्चन - हेतवे ॥
नातिवृद्धो न हीनाङ्गो, न कोपी न च वालकः ।
मलिनो न न मूर्खश्च, सर्वव्यसन - वर्जितः ॥

कलाविज्ञान - सम्पूर्णो, वाचालः शास्त्रवाक्पटुः ।
पण्डितो मृज्यते तत्र, करुणा - रस - पूरितः ।
सर्वाङ्गसुन्दरो वाग्मी, सकली - करण-क्षमः ॥
स्पष्टाक्षरश्च मन्त्रज्ञो, गुरुभक्तो विशेषतः ।
श्रावकान् श्राविकाश्चैव, योगिनश्चार्यिकांस्तथा ।
चतुर्विधं परं सङ्घं, समाह्वयेत् सुभक्तितः ॥
पूजा करण - शुद्धेन, कार्या सर्वज्ञ-सद्मनि ।
ततोऽर्चनं श्रुतस्यापि, गुरोः पादार्चनं ततः ॥
कार्यं सर्वज्ञ - पूजायाः, प्रारम्भे सर्वसिद्धिदम् ।
अनेन विधिना भव्यैः, पूजा कार्या निरन्तरम् ॥
रच - यन्नर्हतां पूजा—, पीठिकां पुण्यमाप्नुयात् ।
फलन्ति सर्व - कार्याणि, विघ्नराशिः क्षयं व्रजेत् ॥

॥ इति पीठिका समाप्ता ॥

श्रीवृषभदेवस्तुति

(स्रग्धरावृत्तम्)

श्रीमद्देवेन्द्र - वन्द्यौ, जिनवरचरणौ, ज्ञानदीपप्रकाशौ ।
लोकालोकावकाशौ, भवजलधिहरौ, संततं भव्यपूज्यौ ॥
नत्वा वक्ष्ये सुपूजां, वृषभजिनपतेः प्राणिनां मुक्तिहेतुं ।
यस्मात्संसारपार, श्रयति स मनुजो, भक्तियुक्तः सदाप्तः ॥

(वसन्त तिलकावृत्तम्)

श्रीनाभिराजतनुजं शुभमिष्टिनाथं,
पापापहं मनुजनागसुरेशसेव्यम् ।
संसार - सागर - सुपोतसमं पवित्रं,
वन्दामि भव्यसुखदं वृषभं जिनेशम् ॥२॥

यस्यात्र नाम जपतः पुरुषस्य लोके,
पापं प्रयाति विलयं क्षणमात्रतो हि ।
सूर्योदये सति यथा तिमिरस्तथास्तं ।
वन्दामि भव्यसुखदं वृषभं जिनेशम् ॥३॥

सर्वार्थसिद्धिनिलयाद्भुवि यस्य पुण्यात्,
गर्भावतार - करणेऽमर - कोटिवर्गैः ।
वृष्टिः कृता मणिमयी पुरुदेशतस्तं,
वन्दामि भव्यसुखदं वृषभं जिनेशम् ॥४॥

जन्मावतारसमये सुरवृन्दवन्द्यैः,
भक्त्यागतैः परमदृष्टितया नतस्तैः ।
नीत्वा सुमेरुमभिवन्द्य सुपूजितस्तं,
वन्दामि भव्यसुखदं वृषभं जिनेशम् ॥५॥

षट्कर्म -युक्तिमवदर्श्य दयां विधाय,
सर्वाः प्रजाः जिनधुरेण वरेण येन ।
सञ्जीविताः सविधिना विधिनायकं तं,
वन्दामि भव्यसुखदं वृषभं जिनेशम् ॥६॥

दृष्ट्वा सकारणमरं शुभदीक्षिताङ्गं,
कृत्वा तपः परममोक्षपदाप्तिहेतुम् ।
कर्मक्षयः परिकृतः भुवि येन तं हि,
वन्दामि भव्यसुखदं वृषभं जिनेशम् ॥७॥

ज्ञानेन येन कथितं सकलं सुतत्त्वं,
दृष्ट्वा स्वरूपमखिलं परमार्थ-सत्यं ।
तद्दर्शितं तदपि येन समं जनेभ्यो,
वन्दामि भव्यसुखदं वृषभं जिनेशम् ॥८॥

इन्द्रादिभिः रचितमिष्टिविधिं यथोक्तं,
सत्प्रातिहार्यममलं सुखिनं मनोज्ञं ।
यस्योपदेशवशतः सुखता नरस्य,
वन्दामि भव्यसुखदं वृषभं जिनेशम् ॥९॥

पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यसुसप्ततत्त्व—
त्रैलोक्यकादिविविधानि विकासितानि ।
स्याद्वादरूपकुसुमानि हि येन तं च,
वन्दामि भव्यसुखदं वृषभं जिनेशम् ॥१०॥

कृत्वोपदेशमखिलं जिनवीतरागो,
मोक्षं गतो गतविकार–पर–स्वरूपः ।
सम्यक्त्वमुख्यगुणकाष्टकसिद्धकस्त्वं,
वन्दामि भव्यसुखदं वृषभं जिनेशम् ॥११॥

विविध - विभव - कर्ता, पाप - सन्ताप - हर्ता,
शिवपद सुख - भोक्ता, स्वर्ग - लक्ष्म्यादि - दाता।
गणधर - मुनि - सेव्यः, "सोमसेनेन" पूज्यः,
वृषभजिनपतिः श्रीं, वाञ्छितां मे प्रदद्यात् ॥१२॥

इदं स्तोत्रं पठित्वा हृदयस्थितसिंहासनस्योपरि पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।
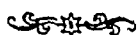
अथ स्थापना

मोक्षसौख्यस्य कर्तृणां, भोक्तृणां शिवसम्पदाम्।
आह्वाननं प्रकुर्वेऽहं, जगच्छान्ति – विधायिनाम् ॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महाबीजाक्षरसम्पन्न ! श्रीवृषभजिनेन्द्रदेव ! मम हृदये अवतर अवतर संवौषट्—इत्याह्वाननम्।

देवाधिदेवं वृषभं जिनेन्द्रं, इक्ष्वाकुवंशस्य परं पवित्रं।
संस्थापयामीह पुरः प्रसिद्धं, जगत्सुपूज्यं जगतां पतिं च ॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महाबीजाक्षरसम्पन्न ! श्रीवृषभजिनेन्द्रदेव ! मम हृदये तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। इति स्थापनम्।

कल्याणकर्ता, शिवसौख्यभोक्ता, मुक्तेःसुदाता, परमार्थयुक्तः।
यो वीतरागो, गतरोषदोषः, तमादिनाथं, निकटं करोमि ॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महाबीजाक्षरसम्पन्न ! श्रीवृषभजिनेन्द्रदेव ! मम हृदय-समीपे सन्निहितो भव भव वषट्। इति सन्निधिकरणम्।

अथाष्टकम्

मन्दाक्रान्तावृत्तम्

गाङ्गेया यमुनाहरित्सुसरिताम्, सीतानदीया तथा ।
क्षीराब्धिप्रमुखाब्धितीर्थमहिता, नीरस्य हैमस्य च ॥
अम्भोजीयपरागवासितमहद्गन्धस्य धारा सती ।
देया श्रीजिनपादपीठकमलस्याग्रे सदा पुण्यदा ॥

ॐ ह्रीं परमशान्तिविधायकाय हृदयस्थिताय
श्रीवृषभजिनचरणाय जलम् ।

श्रीखण्डाद्रिगिरौ भवेन गहने, ऋक्षैः सुवृक्षै र्घनैः ।
श्रीखण्डेन सुगन्धिना भवभृतां, सन्ताप-विच्छेदिना ॥
काश्मीरप्रभवैश्च कुङ्कुमरसैः, घृष्टेन नीरेण वै ।
श्रीमाहेन्द्रनरेन्द्रसेवितपदं, सर्वज्ञदेवं यजे ॥

ॐ ह्रीं परमशान्तिविधायकाय हृदयस्थिताय
श्रीवृषभजिनचरणाय चन्दनम् ।

श्रीशाल्युद्भवतन्दुलैः सुविलसद्गन्धै र्जगल्लोभकैः ।
श्रीदेवाब्धि-सरूप-हार-धवलैः नेत्रै र्मनोहारिभिः ॥
सौधौतैरतिशुक्तिजातिमणिभिः, पुण्यस्य भागैरिव ।
चन्द्रादित्यसमप्रभं प्रभुमहो, सञ्चर्चयामो वयम् ॥

ॐ ह्रीं परमशान्तिविधायकाय हृदयस्थिताय
श्रीवृषभजिनचरणाय अक्षतम् ।

मन्दाराब्ज-सुवर्ण-जाति - कुसुमैः, सेन्द्रीयवृक्षोद्भवैः,
येषां गन्धविलुब्ध-मत्त-मधुपैः,प्राप्तं प्रमोदास्पदम् ।

मालाभिः प्रविराजिभिः जिन ! विभो देवाधिदेवस्य ते,
सञ्चर्चे चरणारविन्द-युगलं, मोक्षार्थिनां मुक्तिदम् ॥

ॐ ह्रीं परमशान्तिविधायकाय हृदयस्थिताय
श्रीवृषभजिनचरणाय पुष्पम् ।

शाल्यन्नं घृतपूर्णसर्पिसहितं, चक्षुर्मनोरञ्जकम् ।
सुस्वादुं त्वरितोद्भवं मृदुतरं, क्षीराज्यपक्वं वरम् ॥
क्षुद्रोगादिहरं सुबुद्धिजनकं, स्वर्गापवर्गप्रदम् ।
नैवेद्यं जिन-पाद-पद्म-पुरतः, संस्थापयेऽहं मुदा ॥

ॐ ह्रीं परमशान्तिविधायकाय हृदयस्थिताय
श्रीवृषभजिनचरणाय नैवेद्यम् ।

अज्ञानादि-तमोविनाशन-करैः, कर्पूरदीप्तैं वरैः ।
कार्पासस्य विवर्तिकाग्रविहितैः, दीपैः प्रभाभासुरैः ॥
विद्युत्कान्ति-विशेप-संशय-करैः, कल्याणसम्पादकैः ।
कुर्यादार्तिहरार्तिकां जिन ! विभो ! पादाग्रतो युक्तितः ॥

ॐ ह्रीं परमशान्तिविधायकाय हृदयस्थिताय
श्रीवृषभजिनचरणाय दीपम् ।

श्रीकृष्णागरु - देवतारु - जनितैः, धूमध्वजोद्वर्तिभिः ।
आकाशं प्रति व्याप्तधूम्रपटलैः, आह्वानितैः षट्पदैः ॥
यः शुद्धात्मविबुद्धकर्मपटलोच्छेदेन जातो जिनः ।
तस्यैव क्रमपद्मयुग्मपुरतः, सन्धूपयामो वयम् ॥

ॐ ह्रीं परमशान्तिविधायकाय हृदयस्थिताय
श्रीवृषभजिनचरणाय धूपम् ।

नारिङ्गाम्र-कपित्थ-पूग-कदली–द्राक्षादि-जातैः फलैः ।
चक्षुश्चित्तहरैः प्रमोदजनकैः, पापापहै र्देहिनाम् ॥
वर्णाढ्यैः मधुरैः सुरेशतरुजैः, खर्जूरपिण्डैस्तथा ।
देवाधीश-जिनेश-पाद-युगलं, सम्पूजयामि क्रमात् ॥

ॐ ह्रीं परमशान्तिविधायकाय हृदयस्थिताय
श्रीवृषभजिनचरणाय फलम् ।

नीरैश्चन्दन-तन्दुलैः सुसघनैः, पुष्पैः प्रमोदास्पदैः ।
नवेद्यैः नवरत्नदीपनिकरैः, धूमैस्तथा धूपजैः ॥
अर्घ्यं चारुफलैश्च मुक्तिफलदं, कृत्वा जिनाङि.घ्र-द्वये ।
भक्त्या श्रीमुनिसोमसेनगणिना, मोक्षो मया प्रार्थितः ॥

ॐ ह्रीं परमशान्तिविधायकाय हृदयस्थिताय
श्रीवृषभजिनाय अर्घ्यम् ।

जिनेन्द्रपादाब्जयुगस्य भक्त्या, जिनेन्द्रमार्गस्य सुरक्षपालं ।
सम्यक्त्वयुक्तं गुणरश्मिपूर्णं, गोवक्त्रयक्षं परिपूजयामि ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभदेवपादारविन्दसेवकगोवक्त्रयक्षाय
आगतविघ्ननिवारकाय अर्घ्यम् ।

चक्रेश्वरीं जैनपदारविन्द—सहानुरक्तां जिनशासनस्थां ।
विघ्नौघहन्त्रीं सुखधामकर्त्रीं, भक्त्या यजे तां सुखकार्य-
कर्त्रीम् ॥

ॐ ह्रीं जिनमार्गरक्षाकर्यै दारिद्र्यनिवारिकायै
चक्रेश्वर्यै अर्घ्यम् ।

अथाष्टदलकमलपूजा

(वसन्ततिलकावृत्तम्) सर्वविघ्ननाशक

भक्तामर - प्रणतमौलि - मणिप्रभाणा—
मुद्योतकं दलित - पापतमो - वितानम् ।
सम्यक्प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा—
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ॥१॥

नम्रासुरासुरनृनाथशिरांसि यस्य,
सम्बिम्बितानि नखविंशतिदर्पणेऽस्मिन् ।
तं विश्वनाथमभिवन्द्य सुपूजयामि,
पक्वान्न - पुष्प - जलचन्दनतन्दुलाद्यैः ॥१॥

भक्त अमर नत मुकुट सुमणियों, की सु-प्रभा का जो भासक ।
पापरूप अतिसघन तिमिर का, ज्ञान-दिवाकर-सा नाशक ॥
भव-जल पतित जनों को जिसने, दिया आदि में अवलम्बन ।
उनके चरण-कमल का करते, सम्यक बारम्बार नमन ॥१॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं, णमो जिणाणं ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं स्वाहा।

(मंत्र) ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं श्रीं क्लीं ब्लूं क्रौं ॐ ह्रीं नमः स्वाहा ।

(विधि) ऋद्धि और मंत्र श्रद्धापूर्वक प्रतिदिन १०८ बार जपने से समस्त विघ्न नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अर्थ—विशेष वैभवशाली देवों से पूजित, अपने तथा औरों के पापसमूह के नाशक और अपने वीतराग उपदेश द्वारा प्राणियों को

संसारसमुद्र से निकालने वाले जिनेन्द्रदेव के चरणों को नमस्कार कर मैं यह स्तुति करता हूं ॥१॥

ॐ ह्रीं विश्वविघ्नहराय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्रीवृषभजिनाय अर्घ्यम् ॥१॥

Having duly bowed down to the feet of Jina, which, at the beginning of the yuga, was the prop for men drowned in the ocean of worldliness, and which illumine the lustre of the gems of the prostrated heads of the devoted gods, and which dispel the vast gloom of sins. 1.

सकलरोगनाशक

यः संस्तुतः सकलवाङ् - मयतत्त्वबोधा—
दुद्भूत - बुद्धि - पटुभिः सुरलोकनाथैः ।
स्तोत्रै र्जगत्त्रितयचित्त - हरैरुदारैः,
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥२॥

रम्यैः सुसंस्तवन - कोटिभि - रादरेण,
देवैःस्तुतो विविधशस्त्रयुतै र्जिनो यः ।
संसारसागर - सुतारण - नौसमानं,
पूजामि चारुचरु - चन्दन - पुष्पतोयैः ॥२॥

सकल वाङ्मय तत्त्ववोध से, उद्भव पटुतर धी-धारी ।
उसी इन्द्र की स्तुति से है, वन्दित जग-जन मन-हारी ॥
अति आश्चर्य की स्तुति करता, उसी प्रथम जिनस्वामी की ।
जगनामी - सुखधामी तद्भव - शिवगामी अभिरामी की ॥२॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो ओहिजिणाणं ।

(मंत्र) ऊँ ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लूं नमः।

(विधि) श्रद्धासहित लगातार २१ दिन तक १०८ वार ऋद्धिमन्त्र जपने से समस्त रोग और शत्रु शान्त हो जाते हैं।

अर्थ—सम्पूर्ण द्वादशाङ्ग का ज्ञान होने से प्रखरबुद्धि युक्त इन्द्रों ने तीनों लोकों के चित्त को लुभाने वाले प्रशस्त स्तोत्रों से जिसकी स्तुति की थी उस आदिनाथ भगवान की स्तुति करने के लिये में अल्पज्ञ प्रवृत्त होता हूं, यह आश्चर्य की बात है ॥२॥

ॐ ह्रीं नानामरसंस्तुताय सकलरोगहराय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्रीवृषभजिनाय अर्घ्यम्।

I shall indeed pay homage to that First Jinedra, Who with beautiful orisons captivating the minds of all the three worlds, has been worshipped by the lords of the gods endowed with profound wisdom born of all the Shastras. 2.

सर्वसिद्धि दायक

बुद्धया विनापि विबुधार्चितपादपीठ !
स्तोतुं समुद्यतमति विगतत्रपोऽहम्।
बालं विहाय जलसंस्थितमिन्दुबिम्ब—
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥३॥

युक्त्या क्रियास्तवनमादिजिनस्य मूढो,
मत्या विनापि बुधसेवितपादकस्य।
सम्पादयामि मनसीह कुतो विचारः,
पूजारतः सुचिरतः सुखदायकस्य ॥३॥

स्तुति को तय्यार हुआ हूँ, मैं निर्बुद्धि छोड़ के लाज ।
विज्ञजनों से अर्चित हे प्रभु, मंदबुद्धि की रखना लाज ॥
जल में पड़े चन्द्र-मंडल को, बालक बिना कौन मतिमान ।
सहसा उसे पकड़ने वाली, प्रबलेच्छा करता गतिमान ॥३॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो परमोहिजिणाणं ।

(मंत्र) ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सिद्धेभ्यो बुद्धेभ्यः सर्वसिद्धदायकेभ्यो नमः स्वाहा ।

(विधि) श्रद्धापूर्वक साल दिन तक प्रतिदिन त्रिकाल १०८ बार ऋद्धिमंत्र जपने से सर्वसिद्धियां प्राप्त होती हैं ॥३॥

अर्थ—हे देवों के द्वारा पूजनीय जिनेन्द्र ! विशेष बुद्धि के न होने पर भी जो मैं आपकी स्तुति करने में तत्पर हो रहा हूं; यह मेरी ढीठता ही है, क्योंकि मेरा यह प्रयत्न पानी में प्रतिबिम्बित चन्द्र के प्रतिबिम्ब को बड़े चाव से पकड़ने वाले बालक की भांति ही है ॥३॥

ॐ ह्रीं मत्यादिसुज्ञानप्रकाशनाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्रीवृषभजिनाय अर्घ्यम् ॥३॥

Shameless I am, O Lord, as I, though devoid of wisdom. have decided to eulogise you, whose feet have been worshipped by the gods. Who, but an infant, suddenly wishes to grasp the disc of the moon reflected in water ? 3.

जलजन्तु-मोचक

वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र ! शशाङ्ककान्तान्,
कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या ।
कल्पान्त - कालपवनोद्धत - नक्र - चक्रं
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥४॥

चन्द्रस्य कान्तिसदृशान् परमान् गुणौघान्,
कोऽसौ पुमान् तव विभो ! कथितुं समर्थः ।
तस्माद् विधाय जिनपूजनमेव कार्यम् ।
मुक्तिं व्रजामि वरभक्ति-जवात् देव ! ॥४॥

हेजिन ! चंद्रकान्त से वढ़कर, तव गुण विपुल अमलअतिश्वेत ।
कह न सकें नर हे गुण-सागर, सुर-गुरु के सम वुद्धिसमेत ॥
मक्र-नक्र-चक्रादि जन्तु युत, प्रलय पवन से वढ़ा अपार ।
कौन भुजाओं से समुद्र के, हो सकता है परले पार ॥४॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोहिजिणाणं ।

(मंत्र) ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं जलयात्रादेवताभ्यो नमः स्वाहा ।

(विधि) सात दिन तक प्रतिदिन १००० वार श्रद्धापूर्वक ऋद्धि-मंत्र जपने तथा २१ कंकरियों को क्रमशः एक २ कंकरी को उक्त मंत्र से मंत्रित कर जल में डालने से जाल में मछलियां नहीं फँसती ॥४॥

अर्थ—हे गुणनिधे ! जिस तरह प्रलयकाल की प्रचण्ड वायु से कुपित और लहराते हुये हिंसक मगरमच्छों से परिपूर्ण समुद्र को कोई भुजाओं से नहीं तर सकता; उसी प्रकार वृहस्पति के समान वुद्धिमान पुरुष भी आपके निर्मल गुणों का वर्णन नहीं कर सकता, फिर मुझ अल्पज्ञ की तो वात ही क्या है ? ॥४॥

ॐ ह्रीं नानादुःखसमुद्रतारणाय क्लींमहावीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्रीवृषभजिनाय अर्घ्यम् ॥४॥

Lore thou art the very occean of virtues who though vying in wisdom with the preceptor or the gods, can describe thine excellences spotless like the moon? Whoever can cross with hands the ocean, full of alligators lashed to fury by the winds of the Doomsday. 4

अक्षिरोग संहारक

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश !
कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः ।
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रं,
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ।।५।।

मूढोऽप्यहं जिनगुणेषु सदानुरक्तः,
भक्तिं करोमि मतिहीन उदार-बुद्धया ।
कार्यस्य सिद्धिमुपयाति सदैव पुण्यात्,
तस्माद्व्रजामि जिनराजपदारविन्दम् ।।५।।

वह मैं हूँ कुछ शक्ति न रखकर, भक्ति प्रेरणा से लाचार ।
करता हूँ स्तुति प्रभु तेरी, जिसे न पौर्वापर्य विचार ।।
निजशिशु की रक्षार्थ आत्म-बल, विना विचारे क्या न मृगी ।
जाती है मृगपति के आगे, प्रेम-रंग में हुई रँगी ।।५।।

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो अणंतोहिजिणाणं ।

(मंत्र) ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं क्रौं सर्वसंकटनिवारणेभ्यः सुपार्श्वयक्षेभ्यो नमो नमः स्वाहा ।

(विधि) श्रद्धासहित ७ दिन तक प्रतिदिन ऋद्धिमंत्र का १००० वार जाप करने से सब तरह के नेत्ररोग-शमन हो जाते हैं ।

अर्थ—हे मुनिनाथ ! जैसे हरिणी शक्ति न रहते हुये भी केवल प्रेमवश अपने बच्चे की रक्षा के लिये सिंह का सामना करती है, उसी प्रकार मैं भी बौद्धिकशक्ति न होने पर भी श्रद्धामात्र से आपका स्तवन करने के लिये प्रवृत्त हुआ हूँ ।।५।।

ॐ ह्री सकलकार्यसिद्धिकराय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्रीवृषभजिनाय अर्घ्यम् ॥५॥

Though devoid of power yet urged by devotion, O Great Sage, I am determined to eulogise you. Does not a deer, not taking into account its own might, face a lion to protect its young-one out of affection ? 5.

सरस्वती-भगवती-विद्या प्रसारक

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम,
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्र - चारु - कलिका - निकरैकहेतुः ॥६॥

ये सन्ति शास्त्रसबला प्रहसन्ति ते मां,
भक्त्या तथापि जिनभक्तिवशात् करोमि ।
पूजाविधिं जिनपतेः सुरचित्तचौरं,
स्वर्गापवर्गसुखदं परमं गुणौघम् ॥६॥

अल्पश्रुत हूँ श्रुतवानों से, हास्य कराने का ही धाम ।
करती है वाचाल मुझे प्रभु, भक्ति आपकी आठों याम ॥
करती मधुर गान पिक मधु में, जगजन मनहर अति अभिराम ।
उसमें हेतु सरस फल फूलों, के युत हरे - भरे तरु - आम ॥६॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो कोट्ठबुद्धीणं ।

(मंत्र) ॐ ह्रीं श्रां श्रीं श्रूं श्रः हं सं यः यः यः ठः ठः ठः सरस्वती भगवती विद्याप्रसादं कुरु २ स्वाहा ।

(विधि) २१ दिन तक प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि-मंत्र को श्रद्धा सहित जपने से बहुत शीघ्र विद्या आती है ॥६॥

अर्थ—हे जिनेश ! जिस तरह अबोध कोयल वसन्त ऋतु में केवल आम्रमञ्जरी का निमित्त पाकर मधुर ध्वनि करती है, उसी प्रकार अल्पज्ञ और विद्वानों के हास्यपात्र मुझे केवल आपकी भक्ति ही आपकी स्तुति करने के हेतु जबरन वाचाल कर रही है ॥६॥

ॐ ह्रीं याचितार्थप्रतिपादनशक्तिसहिताय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्रीवृषभजिनाय अर्घ्यम् ॥६॥

Though my learning is poor, and I am the butt of ridicule to the learned, yet it is my devotion towards You, which forces me to be vocal. The only cause of the cuckoo's sweet song in the spring-time is indeed the charming mango buds. 6.

सर्वदुरित संकट क्षुद्रोपद्रव निवारक

त्वत्संस्तवेन भव - सन्तति - सन्निबद्धं,
पापं क्षणात्क्षय - मुपैति - शरीरभाजाम् ।
आक्रान्त - लोक - मलिनील - मशेषमाशु,
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वर-मन्धकारम् ॥७॥

स्तोत्रेण नाथ ! विलय क्षणमात्रतो यत्
पापं प्रयाति पठतां भवतां नरस्य ।
मुक्तेः सुखं स हि भुनक्ति निवार्य कुष्टं,
पूजां करोमि सततं च ततो जिनस्य ॥७॥

जिनवर की स्तुति करने से, चिर संचित भविजन के पाप ।
पल भर में भग जाते निश्चित, इधर-उधर अपने ही आप ॥

सकललोक में व्याप्त रात्रि का, भ्रमर सरीखा काला ध्वान्त।
प्रात: रवि की उग्र किरण लख, होजाता क्षणमें प्राणान्त ॥७॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो वीजबुद्धीणं।

(मंत्र) ॐ ह्रीं हं सं श्रां श्रीं क्रौं क्लीं सर्वदुरितसंकटक्षुद्रोपद्रव-कष्टनिवारणं कुरु २ स्वाहा।

(विधि) २१ दिन तक प्रतिदिन १०८ वार ऋद्धिमंत्र भावसहित जपने से किसी प्रकार का विष नहीं चढ़ता। तथा कंकरी को १०८ वार मंत्रित कर सर्प के सिरपर मारने से सर्प कीलित हो जाता है ॥७॥

अर्थ—हे प्रभो! जिस तरह सूर्य की किरणों द्वारा रात्रि का समस्त अन्धकार नष्ट हो जाता है उसी तरह आपके स्तवन से प्राणियों का अनेक जन्म में सञ्चित पाप नष्ट हो जाता है ॥७॥

ॐ ह्रीं सकलपापफलकुष्टनिवारणाय, क्लींमहावीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्रीवृषभजिनाय अर्घ्यम् ॥७॥

As the black-bee-like darkness of the night, over-spreading the universe, is dispelled instantaneously by the rays of the sun, so is the sin of men, accumulated through cycles of births, dispelled by the eulogies offered to you. 7

सर्वारिष्ट योग निवारक

मत्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेद–
मारभ्यते तनुधियापि तव प्रभावात्।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु,
मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूद-विन्दुः ॥८॥

ज्ञात्वा मया सुरचितां जिननाथ-पूज्यां,
पूजां विधाय पुरुषः शिवधाम 'याति।

सम्यक्त्वमुख्य - गुणकाष्टक - धारिसिद्धः,
सिद्धः भवेत्स भविनां भवतापहारी ॥८॥

मैं मति-हीन-दीन प्रभु तेरी, शुरू करूं स्तुति अघहान।
प्रभु-प्रभाव ही चित्त हरेगा, सन्तों का निश्चय से मान॥
जैसे कमल-पत्र पर जल-कण, मोती कैसे आभावान।
दिपते हैं फिर छिपते हैं असली मोती में हे भगवान॥८॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं, णमो पादाणुसारिणं।

(मंत्र) ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं स्वाहा। ॐ ह्रीं लक्ष्मणरामचन्द्रदेव्यै नमो नमः स्वाहा।

(विधि) २१ दिन तक प्रतिदिन श्रद्धासहित ऋद्धिमंत्र का जाप करने ,र के अरिष्ट मिट जाते हैं॥८॥

अर्थ—हे प्रभो! जिस तरह कमलिनी के पत्र पर पड़ी हुई पानी की बंद उस पत्ते के प्रभाव से मोती के समान सुन्दर दिखकर दर्शकों के चित्त को प्रसन्न करती है, उसी प्रकार मुझ मन्दबुद्धि द्वारा की गई आपकी स्तुति भी आपके प्रभाव से सज्जनों के चित्त को प्रसन्न करेगी॥८॥

ॐ ह्रीं अनेकसंकटसंसारदुःखनिवारणाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्रीवृषभजिनाय अर्घ्यम्॥८॥

Thinking thus O Lord, I, though of little intelligence, begin this eulogy (in praise of you), which will, through Your magnanimity, captivate the minds of the righteous. water drops, indeed, assume the lustre of pearls on louts-leaves. 8.

जलकुसुमसुगन्धै - रक्षतैः दीपधूपैः ।
विविध - फलनिवेद्यै - रर्चयामीह देवम् ॥
सुरनरवरसेव्यं दोहदानां वरेशं ।
शिवसुखपदधामं प्राणिनां प्राणनाथम् ॥

ॐ ह्रीं अष्टदलकमलाधिपतये श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ।

अथ षोडश दलकमलपूजा

सप्तभयसंहारक अभीप्सितफलदायक

आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं,
त्वत्सङ्कथापि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकासभञ्जि ॥९॥

तव गुणावलिगानविधायिनो, भवति दूरतरं दुरितास्पदं ।
तव कथापिशिवाढ्यविधायिका, कुरु जिनार्चनकं शुभदायकं

दूर रहे स्तोत्र आपका, जो कि सर्वथा है निर्दोष ।
पुण्य-कथा ही किन्तु आपकी, हर लेती है कल्मष-कोष ॥
प्रभा प्रफुल्लित करती रहती, सर के कमलों को भरपूर ।
फेंका करता सूर्य-किरण को, आप रहा करता है दूर ॥९॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं, णमो संभिण्णसोदाराणं ह्रां ह्रीं ह्रूं फट् स्वाहा ।

(मंत्र) ॐ ह्रीं श्रीं क्रौं क्लीं र्व्हीं रः रः हं हः नमः स्वाहा ।

(विधि) श्रद्धापूर्वक चार कंकरी १०८ वार मंत्र कर चारों दिशाओं में फेंकने से पथ कीलित हो जाता है तथा सप्तभय भाग जाते हैं।

भावार्थ—हे जिनेश ! आपके निर्दोष स्तवनमें तो अचिन्त्य शक्ति है ही, परन्तु आपकी पवित्र कथाका सुनना ही प्राणियों के पापों को नष्ट कर देता है। जैसे सूर्य तो दूर ही रहता है, परन्तु उसकी उज्ज्वल किरणें ही सरोवरो में कमलों को विकसित कर देती हैं ॥९॥

ॐ ह्रीं सकलमनोवांछितफलदात्रे क्लींमहावीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम् ॥९॥

Let alone Thy eulog, which destryoys all blemishes; even the mere mention of Thy name destroys the sins of the world. After all the sun is far away, still his more light makes the lotuses bloom in the the tanks. 9

कूकरविषनिवारक

नात्यद्भुतं भुवन - भूषण ! भूतनाथ !
भूतै गुणै र्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किम्वा,
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥१०॥

नहि विभोऽद्भुतमंत्रसमप्रभो, भवति यो भविनां भुवि भक्तिद:
जिनवरार्चनतोऽर्चनतार्चितं, फलमिदं भविता कथितं जिनैः

त्रिभुवनतिलक जगपति हे प्रभु ! सद्गुरुओं के हे गुरुवर्य्य ।
सद्भक्तों को निजसम करते, इसमें नहीं अधिक आश्चर्य ॥
स्वाश्रित जन को निजसम करते, धनी लोग धन धरनी से ।
नहीं करें तो उन्हें लाभ क्या ? उन धनिकों की करनी से ॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो सयंबुद्धीणं।

(मंत्र) जन्मसद्ध्यानतो जन्मतो वा मनोत्कर्षधृतावादि नोर्या-नाक्षान्ताभावे प्रत्यक्षा बुद्धान्मनो ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः श्रां श्रीं श्रूं श्रौं श्रः सिद्धबुद्धकृतार्थो भव २ वषट् सम्पूर्ण स्वाहा। (!)

(विधि) श्रद्धापूर्वक नमक की ७ डली लेकर प्रत्येक को १०८ वार मंत्रित कर खाने से कुत्ते के विष का असर नहीं होता।

भावार्थ – हे भुवनरत्न ! यदि सत्यार्थ गुणों द्वारा आपकी स्तुति करने वाले मानव आपके ही सदृश हो जांय तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि संसार में उस स्वामी से लाभ ही क्या ? जो अपने अधीन व्यक्तियों को अपने समान नहीं बना लेवे ॥१०॥

ॐ ह्रीं अर्हंजिनस्मरणजिनसम्भूताय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम्।

O ornament of the world ! O Lord of beings ! No wonder that those, adoring You with (Thy) real qualities, become equal to you. What is the use of that (master), who does not make his subordintates equal to himself by (the gifts of) wealth. 10.

अभीप्सित-आकर्षक

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयं,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः।
पीत्वा पयः शशिकरद्युतिदुग्धसिन्धोः,
क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत् ? ॥११॥

भवति दर्शनमेवमिते सति, भवति यादृश एव सुतोपकः।
न हि तथा परतः क्वचिदेव तत्, सततमेव करोमि तवार्चनम् ॥

हे अनिमेष विलोकनीय प्रभु, तुम्हें देखकर परम-पवित्र।
तोषित होते कभी नहीं हैं, नयन मानवों के-अन्यत्र ॥
चन्द्र-किरण सम उज्ज्वल निर्मल, क्षीरोदधि का कर जलपान।
कालोदधि का खारा पानी, पीना चाहे कौन पुमान ॥११॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो पत्तेयबुद्धीणं।

(मंत्र) ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं श्रां श्रीं कुमतिनिवारिण्यै महामायायै नमः स्वाहा।

(विधि) श्रद्धासहित २१ दिन तक प्रतिदिन १०८ बार ऋद्धि-मंत्र जपने से जिसे बुलाने की उत्कण्ठा हो वह आ सकता है। बारह हजार मंत्र जपकर सरसों के तीन घेर करे तो वर्षा होय ॥११॥

अर्थ—हे लोकोत्तम ! जैसे क्षीरसागर के निर्मल और मिष्ट जल का पान करने वाला मनुष्य अन्य समुद्र के खारे पानी को पीने की इच्छा नहीं करता, उसी तरह आपकी वीतरागमुद्रा को निरख कर मनुष्यों के नेत्र अन्य देवों की सरागमुद्रा के देखने से तृप्त नहीं होते ॥११॥

ॐ ह्रीं सकलतुष्टिपुष्टिकराय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम् ॥११॥

Having (once) seen You, fit to be seen with winkless eyes or by Gods, the eyes of man do not find satisfaction elsewhere. Having drunk the moon-white milk of the milky ocean. who desires to drink the saltish water of the sea ? 11.

हस्ति-मद-विदारक, वांछित रूप प्रदायक

यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत !

तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ।।१२।।

जिनविभो ! तव रूपमिव क्वचित्,
न भवतीह जने विभवान्विते ।।
भवति पापलयं जिनदर्शनात्,
जिन ! सदार्चनतां प्रकरोमि ते ।।

जिन जितने जैसे अणुओं से, निर्मापित प्रभु तेरी देह ।
थे उतने वैसे अणु जग में, शांत-राग-मय निःसन्देह ।।
हे त्रिभुवन के शिरोभाग के, अद्वितीय आभूषण - रूप ।
इसीलिए तो आप सरीखा, नहीं दूसरों का है रूप ।।१२।।

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो वोहियवुद्धीणं ।

(मंत्र) ॐ आं आं अं अः सर्वराजप्रजामोहिनि सर्वजनवश्यं कुरु कुरु स्वाहा ।

(विधि) श्रद्धासहित ४२ दिन तक प्रतिदिन १००० ऋद्धिमंत्र जपना चाहिए । एक पाव तिलतेल को उक्त मंत्र से मंत्रित कर हाथी को पिलाने से उसका मद उतर जाता है ।।१२।।

अर्थ—हे लोकशिरोमरण ! आपके शरीर की रचना जिन पुद्गल परमाणुओं से हुई है; वे परमाणु संसार में उतने ही थे। यदि अधिक होते तो आप जैसा रूप और का भी होना चाहिये था, किन्तु वास्तव में आपके समान सुन्दर पृथिवी पर कोई दूसरा नहीं है ।।१२।।

ॐ ह्रीं वांछितरूपफलशक्तये क्लींमहावीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम् ।।१२।।

O supreme ornament of all the three worlds ! As many indeed in this world were the atoms possessed of the lustre of non-attachment, that went to the composition of Your body and that is why no other form like that of Yours exists on this earth. 12.

लक्ष्मी-सुख-प्रदायक, स्वशरीररक्षक

वक्त्रं क्व ते सुर - नरोरग - नेत्रहारि,
निःशेष - निर्जित - जगत्त्रितयोपमानम् ।
बिम्बं कलङ्क - मलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पाण्डु पलाशकल्पम् ।।१३।।

सुरनरोरग-मानसहारकं, सुवदनं शशितुल्यमतं त्वकं ।
जगति नाथ ! जिनस्य तवात्र भो, परियजे विधिनात्र
जिनं मुदा ।।१३।।

कहाँ आपका मुख अतिसुन्दर, सुर-नर-उरग नेत्र-हारी ।
जिसने जीत लिये सब जग के, जितने थे उपमाधारी ।।
कहाँ कलंकी बंक चन्द्रमा, रंक-समान कीट-सा दीन ।
जो पलाश-सा फीका पड़ता, दिन में हो करके छवि-छीन ।।१३।।

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो ऋजुमदीणं ।

(मंत्र) ॐ ह्रीं श्रीं हं सः ह्रौं ह्रां ह्रीं द्रां द्रीं द्रौं द्रः मोहिनि सर्वजनवश्यं कुरु कुरु स्वाहा ।

(विधि) श्रद्धासहित ७ दिन तक प्रतिदिन १०,०० ऋद्धिमंत्र का जप करने तथा ७ कंकरियों को १०८ बार मंत्रित कर चारों ओर फेंकने से चोर चोरी नहीं कर पाते और मार्ग में भय नहीं रहता ।।१३।।

अर्थ—हे प्रभो ! आपके मुख को चन्द्रमा की उपमा देने वाले विद्वान् गलती करते हैं; क्योंकि आपके मुख की प्रभा कभी फीकी नहीं

पड़ती, परन्तु चन्द्रमा की प्रभा दिन में फीकी पड़ जाती है। तथा चन्द्रमा कलङ्की है, किन्तु आपका मुख कलङ्करहित है ॥१३॥

ॐ ह्रीं लक्ष्मीसुखविधायकाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम् ॥१३॥

Where is Thy face which attracts the eyes of gods, men, and divine serpents, and which has thoroughly surpassed all the standards of comparison in all the three worlds. That spotted moon-disc which by the day time becomes pale and lustreless like the white, dry leaf, stands no comparison ! 13.

आधि-व्याधि नाशक

सम्पूर्ण - मण्डल - शशाङ्क - कलाकलाप-
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति ।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेकं,
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ॥१४॥

तव गुणान् हृदि धारकमानवो,
भ्रमति निर्भयतो भुवि देववत् ।
शशिसमै र्जलचन्दनमुख्यकैः,
परियजामि नतो जिनपादुकाम् ॥१४॥

तव गुण पूर्ण-शशाङ्क कान्तिमय, कला-कलापों से बढ़के ।
तीन लोक में व्याप रहे हैं, जो कि स्वच्छता में चढ़के ॥
विचरें चाहे जहाँ कि जिनको, जगन्नाथ का एकाधार ।
कौन माई का जाया रखता, उन्हें रोकने का अधिकार ॥१४॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो विउलमदीणं ।

(मंत्र) ॐ नमो भगवत्यै गुणवत्यै महामानस्यै स्वाहा ।

(विधि) श्रद्धापूर्वक ७ कंकरियों को २१ वार मंत्रित कर चारों ओर फेंकने से आधि-व्याधि शत्रु आदि का भय मिट जाता है और लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ॥१४॥

अर्थ—हे गुणाकर ! जैसे किसी राजाधिराज के आश्रित व्यक्ति को जहां तहां इच्छानुसार घूमते रहते कोई रोक नहीं सकता उसी प्रकार आपके आश्रित कीर्ति आदिक गुणों को त्रिलोक में कोई नहीं रोक सकता अर्थात् आपके गुण लोकत्रय में व्याप्त हो रहे हैं ॥१४॥

ॐ ह्रीं भूतप्रेतादिभयनिवारणाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम् ॥१४॥

Thy virtues, which are bright like the collection of digits of full-moon, bestride the three worlds. Who can resist them while moving at will, having taken resort to that supreme Lord Who is ihe sole overlord of all the three worlds. 14.

सन्मान-सौभाग्य-संवर्द्धक

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभि-
र्नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम् ।
कल्पान्त - काल - मरुता चलिताचलेन,
किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ॥१५॥

अमरनारिकटाक्षशरासनै-र्न चलितो वृषभः स्थिरमेरुवत् ।
शिवपुरे उषितं च जिनै र्नुतं, परियजे स्तवनैश्च जलादिभिः ॥

मद की छकीं अमर ललनाएँ, प्रभु के मन में तनिक विकार ।
कर न सकीं आश्चर्य कौन सा, रह जाती हैं मन को मार ॥

गिर गिर जाते प्रलय पवन से, तो फिर क्या वह मेरु-शिखर।
हिल सकता है रंच-मात्र भी, पाकर झंझावात प्रखर ।।१५।।

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो दशपुव्वीणं।

(मंत्र) ॐ नमो भगवती गुणवती-सुसीमा पृथ्वी-वज्रशृङ्खला-मानसी-महामानसीदेवीभ्यः स्वाहा।

(विधि) श्रद्धापूर्वक ५४ दिन १००० जाप करे। २१ वार तैल मंत्रित कर मुख पर लगाने से सभा में सम्मान बढ़ता है ।।१५।।

अर्थ—हे मनोविजयिन् ! प्रलय की पवन से यद्यपि अनेक पर्वत कम्पित हो जाते हैं परन्तु सुमेरु पर्वत लेशमात्र भी चलायमान नहीं होता, उसी प्रकार देवाङ्गनाओं ने यद्यपि अनेक महान् देवों का चित्त चलायमान कर दिया, परन्तु आपका गम्भीर चित्त किसी के द्वारा लेशमात्र भी चलायमान नहीं किया जा सका ।।१५।।

ॐ ह्रीं मेरुवन्मनोबलकरणाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम् ।।१५।।

No wonder that Your mind was not in the least perturbed even by the celestial damsels. Is the peak of Mandaramountain ever shaken by the mountain-shaking winds of Doomsday ? 15.

सर्व विजयदायक

निर्धूम – वर्तिरपवर्जित – तैलपूरः,
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां,
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ! जगत्प्रकाशः।१६।

जगति दीपक इव जिन! देवराट्, प्रकटितं सकलं भुवनत्रयं
पद-सरोज-युगं तु समर्चये, विमलनीरमुखाप्टविधैस्तव ।।

धूम न बत्ती तैल बिना ही, प्रकट दिखाते तीनों लोक।
गिरि के शिखर उड़ाने वाली, बुझा न सकती मारुत झोक॥
तिस पर सदा प्रकाशित रहते, गिनते नहीं कभी दिन-रात।
ऐसे अनुपम आप दीप हैं, स्व-पर-प्रकाशक जग-विख्यात॥१६॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो चउदसपुव्वीणं।

(मंत्र) ॐ नमो मंगला-सुसीमा-नाम-देवीभ्यां सर्वसमीहितार्थ-वज्रशृङ्खलां कुरु कुरु स्वाहा।

(विधि) ६ दिन तक प्रतिदिन श्रद्धासहित १००० ऋद्धि-मंत्र जपने से राजदरबार में प्रतिवादी की हार होती है और शत्रु का भय नहीं रहता। पेसी के दिन १०८ बार मंत्र पढ़कर स्वयं को वा दूसरों को अमृत का तिलक करे॥१६॥

अर्थ—हे विश्वप्रकाशक आप समस्त संसार को प्रकाशित करने वाले अनोखे दीपक हैं। क्योंकि अन्य दीपकों की बत्ती से धुआं निकलता है, परन्तु आपका वर्ति (मार्ग) निर्धूम (पापरहित) है। अन्य दीपक तैल की सहायता से प्रकाश करते हैं, परन्तु आप बिना किसी की सहायता से ही प्रकाश (ज्ञान) फैलाते हैं। अन्य दीपक जरा भी हवा के झोंक से बुझ जाते हैं, परन्तु आप प्रलयकाल की हवा से भी विकार को प्राप्त नहीं होते। तथा अन्य दीपक थोड़े से ही स्थान को प्रकाशित करते हैं, परन्तु आप समस्त लोक को प्रकाशित करते हैं॥१६॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यलोकवशङ्कराय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम्।

Thou art, O Lord! an unparalled lamp—as it were, the very light of the universe—which, though devoid of smoke, wick and oil, illumines all the three worlds and is invulnerable even to the mountain-shaking winds. 16.

सर्वरोग प्रतिरोधक

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः,
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति ।
नाम्भोधरोदर -- निरुद्ध - महाप्रभावः,
सूर्यातिशायिमहिमासि मुनीद्र ! लोके ।।१०।।

शुभरवीव जिनः जिननायकः,
दुरितरात्रिघनान्ध—तमोपहः ।
स्वजनपद्मविकाश—विधायकः,
स्तवनपूजनकैश्च यजामि तम् ।।

अस्त न होता कभी न जिसको, ग्रस पाता है राहु प्रवल ।
एक साथ वतलाने वाला, तीन लोक का ज्ञान विमल ।।
रुकता कभी प्रभाव न जिसका, वादल की आकर के ओट ।
ऐसी गौरव-गरिमा वाले, आप अपूर्व दिवाकर कोट ।।१७।।

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं णमो अट्ठाङ्गमहानिमित्तकुसलाणं ।

(मंत्र) ॐ णमो णमिऊण अट्ठे मट्ठे क्षुद्रविघट्टे क्षुद्रपीड़ां जठरपीड़ां भंजय २, सर्वपीडाः निवारय २, सर्वरोग-निवारणं कुरु कुरु स्वाहा ।

(विधि) श्रद्धासहित ७ दिन तक १००० जाप जपना चाहिये । अछूता पानी २१ वार मंत्रित कर पिलाने से शारीरिक सभी रोग दूर हो जाते हैं ।।१७।।

अर्थ—हे मुनिनाथ ! आपकी महिमा सूर्य से भी अधिक है । क्योंकि सूर्य सन्ध्या समय अस्त हो जाता है, परन्तु आप सदा प्रकाशित

रहते हैं। सूर्य को राहु ग्रस लेता है, परन्तु आज तक वह आपका स्पर्श तक नहीं कर सका। सूर्य दिन में क्रम क्रम से केवल एक द्वीप के अर्धभाग को ही प्रकाशित करता है, परन्तु आप समस्त लोक को एकसाथ प्रकाशित करते हैं। और सूर्य के प्रकाश को मेघ ढक देते हैं, परन्तु आपके प्रकाश (ज्ञान) को कोई भी नहीं ढक सकता ॥१७॥

ॐ ह्रीं पापान्धकारनिवारणाय क्लींमहावीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम् ॥१७॥

O Great Sage, Thou knowest on sitting, nor art Thou eclipsed by Rahu. Thou dost illumine suddenly all the worlds at one and the same time. The water-carrying clouds too can never bedim Thy great glory. Hence in respect of effulgence Thou art greater than the sun in this world. 17.

शत्रुसैन्य स्तम्भक

नित्योदयं दलित – मोह – महान्धकारं,
गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्ज मनल्प–कांति,
विद्योतयत्जगदपूर्व-शशाङ्क-बिम्बम् ॥१८॥

जिनशशी प्रकरोति विभासकं,
सकलभव्य—सुपद्मवनं घनं ।
निशिदिनं तिमिरप्रतिघातको,
वरमहं सुयजामि जलादिकैः ॥

मोह महातम दलने वाला, सदा उदित रहने वाला।
राहु न बादल से दबता पर, सदा स्वच्छ रहने वाला ॥

विश्व-प्रकाशक मुखसरोज तव, अधिक कांतिमय शांतिस्वरूप ।
है अपूर्व जगका शशि-मण्डल, जगत शिरोमणि शिव का भूप ॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्ह णमो विउयणट्टिपत्ताणं ।

(मंत्र) ॐ नमो भगवते जय विजय मोहय २, स्तम्भय २, स्वाहा ।

(विधि) श्रद्धासहित ७ दिन तक १००० जाप जपना चाहिये । १०८ वार ऋद्धि-मंत्र जपने से शत्रुमुख स्तम्भित हो जाता है ।

अर्थ—हे चन्द्रवदन ! आपका मुखकमल एक विलक्षण चन्द्रमा है । क्योंकि प्रसिद्ध चन्द्र तो रात्रि में ही उदित होता है, परन्तु आपका मुखचन्द्र सदा उदित रहता है । चन्द्रमा साधारण अन्धकार का ही नाश करता है, परन्तु आपका मुखचन्द्र मोहरूपी महान् अन्धकार को नष्ट कर देता है । चन्द्रमा को राहु ग्रस लेता है और बादल छिपा देते हैं; परन्तु आपके मुखचन्द्र को न राहु ग्रस सकता है और न बादल छिपा सकते हैं । चन्द्रकी कान्ति कृष्णपक्ष में घट जाती है, परन्तु आपके मुखचन्द्र की कान्ति सदा सदृश रहती है । तथा चन्द्रमा रात्रि में क्रम क्रम से केवल अर्धद्वीप को ही प्रकाशित करता है, परन्तु आपका मुखचन्द्र समस्त लोक को एक साथ प्रकाशित करता है ॥१८॥

ॐ ह्रीं चन्द्रवत्सर्वलोकोद्योतनकराय क्लींमहावीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम् ॥१८॥

Thy lotus-like countenance,—which rises enternally, destorys to the great darkness of ignorance, is accessible neither the mouth of Rahu nor to the clouds; possesses great of luminosity,—is the universe-illuminating peerless moon. 18.

उच्चाटनादि रोधक

किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा,
युष्मन्मुखेन्दु - दलितेषु तमःसु नाथ ?
निष्पन्नशालिवनशालिनि जीवलोके,
कार्यं कियज्जलधरै र्जलभारनम्रैः ॥१६॥

जिनमुखोद्भवकान्ति-विकाशितः,
निखिललोक इतीह दिवाकरः ।
किमथवा सुखदः प्रतिमानवं,
भवतु सः वृषभः शुभसेवया ॥

नाथ आपका मुख जब करता, अन्धकार का सत्यानाश ।
तब दिन में रवि और रात्रि में, चन्द्र-विम्ब का विफल प्रयास ॥
धान्य-खेत जब धरती तल के, पके हुये हों अति अभिराम ।
शोर मचाते जल को लादे, हुये घनों से तब क्या काम ?॥१९॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो विज्जाहराण ।

(मंत्र) ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः यक्ष ह्रीं वषट् फट् स्वाहा ।

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धि-मंत्र को १०८ बार जपने से अपने पर प्रयोग किये गये दूसरे के मंत्र, जादू, टोना, टोटका, मूठ, उच्चाटन आदि का भय नहीं रहता ॥१९॥

अर्थ—हे त्रिलोकीनाथ ! जिस प्रकार अनाज के पक जाने पर जल का बरसना व्यर्थ है; क्योंकि उस जल से कीचड़ होने के सिवाय और कोई लाभ नहीं होता, उसी प्रकार आपके मुखचन्द्र के द्वारा जहां अन्धकार नष्ट हो चुका है; वहां दिन में सूर्य से और रात्रि में चन्द्र से कोई लाभ नहीं ॥१९॥

ॐ ह्रीं सकलकालुष्यदोषनिवारणाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्रीवृषभजिनाय अर्घ्यम् ॥१६॥

When Thy lotus-like face, O Lord, has destroyed the darkness, what's the use of the sun by the day and moon by the night ? What's the use of clouds heavy with the weight of water, after the ripening of the paddy-fields in the world. 19.

सन्तान-सम्पत्ति-सौभाग्य प्रसाधक

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,
नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु ।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं,
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ॥२०॥

त्वयि प्रभो ! प्रतिभाति यथा शुचि,
न हि तथा हरिमुख्यसुरादिपु ।
वसतु सः प्रभुरादिजिनेश्वरो,
मम मनःसरसीव सु-हंसवत् ॥

जैसा शोभित होता प्रभु का, स्वपर-प्रकाशक उत्तम ज्ञान ।
हरिहरादि देवों में वैसा, कभी नहीं हो सकता भान ॥
अति ज्योतिर्मय महारतन का, जो महत्त्व देखा जाता ।
क्या वह किरणाकुलित कांच में, अरे कभी लेखा जाता ॥२०॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो चारणाणं ।

(मंत्र) ॐ श्रां श्रीं श्रूं श्रः शत्रुभयनिवारणाय ठः ठः स्वाहा ।

(विधि) श्रद्धासहित प्रतिदिन ऋद्धि-मंत्र को १०८ वार जपने से सन्तान, सम्पत्ति, सौभाग्य, बुद्धि और विजय की प्राप्ति होती है ॥२०॥

अर्थ—हे सर्वज्ञ ! निज और पर का प्रकाशक तथा निर्मल जैसा ज्ञान आप में सुशोभित होता है, वैसा ज्ञान ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि किसी अन्य देव में नहीं होता । क्योंकि तेज की शोभा महामणि में ही होती है; न कि काच के टुकड़े में ॥२०॥

ॐ ह्रीं केवलज्ञानप्रकाशितलोकालोकस्वरूपाय क्लीमहाबीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम् ॥२०॥

Knowledge abiding in the Lords like Hari and Hara does not shine so brilliantly as it does in You, Effulgence, in a piece of glass, though filled with rays, the rays never attains that glory, which it does in sparkling gems. 20.

सर्वसौख्य सौभाग्य साधक

मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति ।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि ॥२१॥

तव शुभं वरदर्शनमञ्जसा, हरति पापसमूहकमेव तत् ।
भवतु ते चरणाब्जयुगं प्रभो, स्थिरकरं मम चित्तशुचेःकरम्

हरिहरादि देवों का ही मैं, मानूं उत्तम अवलोकन ।
क्योंकी उन्हें देखने भर से, तुझसे तोषित होता मन ॥
है परन्तु क्या तुम्हें देखने, से हे स्वामिन् ! मुझको लाभ ।
जन्म जन्म में भी न लुभा पाते कोई यह मम, अमिताभ ।२१।

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो पण्णसमणाणं ।

(मंत्र) ॐ नमः श्री मणिभद्रः, जयः, विजयः, अपराजितश्च, सर्वसौभाग्यं सर्वसौख्यं च कुरु २ स्वाहा ।

(विधि) श्रद्धासहित मंत्र को ४२ दिन तक १०८ बार जपने से नव अपने वशवर्ती होते हैं और सुख सौभाग्य बढ़ता है ॥२१॥

अर्थ—हे लोकोत्तम ! दूसरे देवों के देखने से तो आप में संतोष होता है यह लाभ है, परन्तु आपके देखने से अन्य किसी देव की ओर चित्त नहीं जाता यह हानि है । अथवा हरिहरादिक देवों का देखना अच्छा है, क्योंकि वे रागी द्वेषी हैं; उन के दर्शन से चित्त सन्तुष्ट नहीं होता तब आपके दर्शन को लालायित होता है, क्योंकि आप वीतराग हैं । आपके दर्शन से चित्त इतना सन्तुष्ट होता है कि मृत्यु के बाद भी वह किसी दूसरे देव का दर्शन नहीं करना चाहता । वहां व्यजोक्ति अलङ्कार है ॥२१॥

ॐ ह्रीं सर्वदोपहरशुभदर्शनाय क्लींमहावीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम् ॥२१॥

Assuredly great I feel, is the sight of Hari, Hara and other gods, but seeing them the heart finds satisfaction only in you. What happens on seeing You on Earth. None else, even through all the future lives, shall be able to attract my mind. 21.

भूत पिशाचादि बाधा निरोधक

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता ।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मि,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥२२॥

सुवनिता जनयन्ति सुतान् वहून्, तव समो नहि नाथ! महीतले
तनुवरं सुखदं सुरभासुरं, मनसि तिष्ठतु मे स्मरणं तु ते ॥

सौ सौ नारी सौ सौ सुत को, जनती रहती सौ सौ ठौर ।
तुम से सुत को जनने वाली, जननी महती क्या है और ?
तारागण को सर्व दिशाएँ, धरें नहीं कोई खाली ।
पूर्व दिशा ही पूर्ण प्रतापी, दिनपति को जनने वाली ॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो आगासगामिणं ।

(मंत्र) ॐ नमो वीरेहि जृंभय २ मोहय २ स्तम्भय २ अवधारणं कुरु २ स्वाहा । (!)

(विधि) श्रद्धासहित हल्दी की गांठ को १०८ वार मंत्रित कर चवाने से डाकिनी शाकिनी भूत पिशाच चुड़ैल आदि भाग जाते हैं ॥२२॥

अर्थ—हे महीतिलक ! जिस प्रकार सूर्य को पूर्व दिशा ही उत्पन्न करती है; अन्य दिशाएँ नहीं, उसी प्रकार एक आपकी माता ही ऐसी हैं जो आप जैसे पुत्ररत्न को पैदा कर सकीं, अन्य किसी माता को ऐसे पुत्ररत्न को पैदा करने का सौभाग्य उपलब्ध नहीं हुआ ॥२२॥

ॐ ह्रीं अद्भुतगुणाय क्लींमहावीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यंम्

Though all the directions do possess stars, yet it is only the eastern direction which gives birth to the thousandrayed (sun), whose pencils of ra ys shine forth brilliantly. So do hundreds of mothers give birth to hundreds of sons, but there is no other mother who gave birth to a son like You. 22

प्रेतबाधा निवारक

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस—
मादित्यवर्णममलं तमसः पुरस्तात् ।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं,
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र! पन्थाः ॥२३॥

पदयुगस्य सुसंस्मरणन्नारः,
शिवपदं लभतेऽति–सुखप्रदं ।
परियजे वर–पादयुगं मुदा,
जिन ! ददातु सुवाञ्छितमत्र मे ॥

तुम को परम पुरुष मुनि मानें, विमल वर्ण रवि तमहारी ।
तुम्हें प्राप्त कर मृत्युञ्जय के, वन जाते जन अधिकारी ॥
तुम्हें छोड़कर अन्य न कोई, शिवपुर–पथ वतलाता है ।
किन्तु विपर्यय मार्ग वता कर, भव-भव में भटकाता है ॥२३॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रां अर्हं णमो आसीविसाणं ।

(मंत्र) ॐ नमो भगवती जयावती मम समीहितार्थ मोक्ष-सौख्यं च कुरु २ स्वाहा ।

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धि-मंत्र को १०८ वार जपकर अपने शरीर की रक्षा करे। पश्चात् इसी मंत्र से झाड़ने पर प्रेतबाधा दूर होती है ।

अर्थ—हे योगीन्द्र ! मुनिजन आपको परमपुरुष, कर्ममलरहित होने से निर्मल, मोहान्धकार का नाशक होने से सूर्य के समान तेजस्वी आपकी प्राप्ति से मृत्यु न होने के कारण मृत्युञ्जय तथा आपके

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो दिट्ठिविसाणं ।

(मंत्र) स्थावरजंगमकायकृतं सकलविषं यद्भक्तेः अमृतायते दृष्टिविषास्ते मुनयः वड्ढमाणस्वामी च सर्वहितं कुरुत२ स्वाहा ।

(विधि) राख मंत्रित कर शिर में लगाने से शिरपीड़ा दूर होती है ।।२४।।

अर्थ—हे गुणार्णव ! आपकी आत्मा का कभी नाश नहीं होने से आप अव्यय (अविनाशी), ज्ञान के लोकत्रय व्यापी होने से अथवा कर्मनाश में समर्थ होने से स्वरूप से अचिन्त्य, संख्यातीत या अद्भुत गुणयुक्त होने से असंख्य, युगादिजन्मा या वर्तमान चौबीसी के प्रथम होने से आद्य (प्रथम), कर्मरहित या निवृत्तिरूप होने से ब्रह्मा, कृतकृत्य होने से ईश्वर, अन्तरहित होने से अनन्त, कामनाश के लिए केतुग्रह के उदय समान होने से अनङ्गकेतु, मुनियों के स्वामी होने से योगीश्वर, रत्नत्रय-रूप योग के ज्ञाता होने से विदितयोग, गुणों और पर्यायों की अपेक्षा अनेक, तीर्थङ्करीय भेद की अपेक्षा एक, केवलज्ञानी होने से ज्ञानस्वरूप तथा कर्ममल रहित होने से 'अमल' कहे जाते हैं। अर्थात् ऋषिगण पृथक् पृथक् गुणों की अपेक्षा आपको अव्यय आदि कहकर स्तुति करते हैं ।।२४।।

ॐ ह्रीं मनोवांछितफलदायकाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्रीवृषभदेवाय अर्घ्यम् ।।२४।।

The righteous consider You to be immutable omnipotent, incomprehensible unumbered the the first, Brahma, the supreme Lord Siva, endless the enemy of Ananga (Cupid), lord of yogis, the knower of yoga, many, one, of the nature of knowledge, and stainless. 24.

हत्वा कर्मरिपून् बहून् कटुतरान्, प्राप्तं परं केवलं ।
ज्ञानं येन जिनेन मोक्षफलदं, प्राप्तं द्रुतं धर्मजम् ॥
अर्घेणात्र सुपूजयामि जिनपं, श्री सोमसेनस्त्वहं ।
मुक्तिश्रीष्वभिलाषया जिन ! विभो ! देहि प्रभो ! वांछितम् ॥

ॐ ह्रीं हृदयस्थितषोडशदलकमलाधिपतये श्री वृषभदेवायार्घम् ।

अथ चतुर्विंशतिदलकमलपूजा

दृष्टिदोषनिरोधक

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्—
त्वं शङ्करोऽसि भुवनत्रय - शङ्करत्वात् ।
धातासि धीर ! शिवमार्गविधे विधानात्
व्यक्तं त्वमेव भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि ॥२५॥

बुद्धः प्रबुद्धो वरबुद्धराजो
मुक्ते विधानाद्भविनां विधाता ।
सौख्यप्रयोगात् जिन ! शङ्करो [illegible]
सर्वेषु त्वं [illegible]

ज्ञान पूज्य है, अमर आपका, [illegible]
भुवनत्रय के सुख—सम्वर्द्धक, [illegible]
मोक्ष-मार्ग के आद्य प्रवर्त्तक [illegible]
तुम सम अवनी पर पुरुषोत्तम, [illegible]

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो उग्गतवाणं।

(मंत्र) ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा झ्रां झ्रौं स्वाहा। ॐ नमो भगवते जयविजयापराजिते सर्वसौभाग्यं, सर्वसौख्यं च कुरु २ स्वाहा।

(विधि) श्रद्धासहित प्रतिदिन ऋद्धि-मंत्र के जपने से नजर उतरती है। और अग्नि का असर आराधक पर नहीं होता ॥२५॥

अर्थ—हे पुरुषोत्तम! विश्व की चराचर वस्तुओं को एक साथ एक समय में जान लेने वाला आपका बुद्धिबोध (केवलज्ञान) देव-देवेन्द्रों द्वारा पूजित होने से आप बुद्ध कहे जाते हैं। सब प्राणियों को बिना भेद-भाव सुख-शान्ति का पथ प्रदर्शन कर उन्हें आत्म-कल्याण की ओर अग्रसर करते हैं, अतः आपको शङ्कर कहते हैं। आपने कर्म-बन्धन-युक्त जीवों को संसार से छुटकारा पाने का रास्ता बता कर प्रतिबोधित किया है, अतः आपको ब्रह्मा कहते हैं। अवनीतल पर आपके समान उपरोक्त गुणों वाला कोई दूसरा पुरुष पैदा नहीं हुआ है। अतः आपको पुरुषोत्तम भी कहते हैं ॥२५॥

ॐ ह्रीं षड्दर्शनपारङ्गताय क्लींमहार्व.जाक्षरसहिताय
श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥२५॥

As Thou possessest that knowledge which is adored by gods, Thou indeed art Buddha, as Thou dost good to all the three worlds, Thou art Shankar; as Thou prescribest the process leading to the parth of Salvation, Thou art Vidhata; and Thou, O Wise Lord, doubtless art Purushottama.25.

अर्धशिर पीड़ा विनाशक

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्ति-हराय नाथ !
तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय ।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधि-शोषणाय ॥२६॥

लोकार्तिनाशाय नमोऽस्तु तुभ्यं,
नमोऽस्तु तुभ्यं जिनभूषणाय ।
त्रैलोक्यनाथाय नमोऽस्तु तुभ्यं,
नमोऽस्तु तुभ्यं भवतारणाय ॥

तीनलोक के दुःखहरण कर-ने वाले हे तुम्हें नमन ।
भूमण्डल के निर्मल-भूषण, आदि जिनेश्वर तुम्हें नमन ॥
हे त्रिभुवन के अखिलेश्वर हो, तुमको वारम्वार नमन ।
भव-सागर के शोषक पोषक, भव्य जनों के तुम्हें नमन ॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो दित्ततवाणं ।

(मंत्र) ॐ नमो ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रूं ह्रूं परजनशान्तिव्यवहारे जयं कुरु २ स्वाहा ।

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धि-मंत्र द्वारा तेल को मंत्रित कर सिर पर लगाने से आधाशीशी (अर्द्धसिर की पीड़ा दूर होती है ॥२६॥

अर्थ—हे नमस्करणीय देव ! हम आपको भक्ति करते है, विनय करते हैं, स्तुति करते हैं, नमस्कार करते हैं, क्यों ? इसलिए कि आप ही सब जीवों के समस्त दुःखों को दूर कर उन्हें राहत पहुँचाते हैं । आप ही अवनीतल के सर्वोत्तम अलङ्कार हैं । आप ही तीनों लोकों

के एकमात्र उपास्य उत्कृष्ट ईश्वर हैं। आप ही संसार-समुद्र को सुखा कर मानवों को अजर-अमर पद देने वाले सत्यदेव हैं। अतः हम, बार-बार प्रणमन करते हैं। पुनश्च आप पूजक को जगत्पूज्य बना देते हैं, अतः आप अति नमस्करणीय हैं ॥२६॥

ॐ ह्रीं नानादुःखविलीनाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥२६॥

O God Jinendra ! O Lord ! you are the destroyer of the miseries of all the three worlds, therefore I bow down to you. I offer my salutes to you who is like a pure matchless ornament, you are the Lord of all the teree worlds you can dry up the ocean of the world 26.

शत्रून्मूलक

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै—
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश !
दोषै-रुपात्त - विविधाश्रय - जात - गर्वैः,
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥२७॥

किमद्भुतं दोषसमुच्चयेन,—
कृत्वाऽत्र गर्वं जिन ! संश्रितोऽसि ।
स्वप्नेऽपि न त्वं गुणराशिधामा,
दोषाश्रितो मर्त्यसमाश्रयेण ॥२७॥

गुणसमूह एकत्रित होकर, तुझमें यदि पा चुके प्रवेश।
क्या आश्चर्य न मिल पाये हों, अन्य आश्रय उन्हें जिनेश ॥
देव कहे जाने वालों से, आश्रित होकर गर्वित दोष।
तेरी ओर न झांक सके वे, स्वप्नमात्र में हे गुणकोष ॥२७॥

अशोकवृक्षाः सुकृता विचित्राः,
छायाघना नाथ ! सुपुण्ययोगात् ।
तवोपरि प्रीतजनेषु नित्यं,
सुखप्रदाः स्युः परमार्थशोभाः ॥

उन्नत तरु अशोक के आश्रित, निर्मल किरणोन्नत वाला ।
रूप आपका दिपता सुन्दर, तमहर मनहर छवि वाला ॥
वितरण किरण निकर तमहारक, दिनकर घनके अविक समीप ।
नीलाचल पर्वत पर होकर, नीराजन करता ले दीप ॥२८॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो महातवाणं ।

(मंत्र) ॐ नमो भगवते जय-विजय जृंभय मोहय मोहय सर्व-सिद्धि, सम्पत्ति, सौख्यं च कुरु २ स्वाहा ।

(विधि) प्रतिदिन श्रद्धासहित १०८ वार ऋद्धि-मंत्र जपने से सभी अच्छे कार्य सिद्ध होते हैं और व्यापार में भी लाभ होता है ॥२८॥

अर्थ—हे अतिशयरूप ! ऊंचे और हरे "अशोकवृक्ष" के नीचे आपका स्वर्णमय उज्ज्वलरूप ऐसा मालूम होता है जैसा काले काले मेघ के पीतवर्ण सूर्य का मण्डल । यह अशोकवृक्ष प्रातिहार्य का वर्णन है ॥२८॥

ॐ ह्रीं अशोकतरुविराजमानाय क्लींमहावीजाक्षरसहिताय
श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ।

Thy shining form, the rays of which go upwards, and which is really very much lustrous and dispels the expanse of darkness, looks excellently beutiful under the Ashoka-tree the orb of the sun by the side of clouds. 28.

तानता हुआ सुन्दर सूर्यविम्ब । अर्थात् जैसे उदयाचल पर्वत के शिखर पर सूर्य शोभा पाता है वैसे ही रत्नजटित सिंहासन पर आपका शरीर शोभायमान होता है । (द्वितीय प्रातिहार्य वर्णन)

ॐ ह्रीं मणि...खचितसिंहासनप्रातिहार्ययुक्ताय क्लींमहाबीजाक्षर सहिताय श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ।

Thy gold-lustred body shines verily on the throne like the disc of the sun on the summit which is varigated with the mass of rays of gems, of the high Rising mountain, the rays of which (disc), spreading in the firmament like a creeper, look (exceedingly) graceful. 29.

शत्रु स्तम्भक

कुन्दावदात - चलचामर - चारु - शोभं,
विभ्राजते तव वपुः कलधौतकान्तम् ।
उद्यच्छशाङ्क - शुचिनिर्झर - वारिधार—
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ।३०।

गङ्गातरङ्गाभविराजमानं, विभ्राजते चामरचारुयुग्मं ।
सुदर्शनाद्रौ गतनिर्झरं वा, तनोति देशेऽत्र-महाविकाशं ॥

ढुरते सुंदर चँवर विमल अति, नवल कुन्द के पुष्प-समान ।
शोभा पाती देह आपकी, रौप्य धवल-सी आभावान ॥
कनकाचल के तुङ्ग शृङ्ग से, झर झर झरता है निर्झर ।
चन्द्र-प्रभा सम उछल रही हो, मानो उसके ही तट पर ॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरगुणाणं ।

(मंत्र) ॐ नमो अर्हं मर्हं क्षुद्रविघर्हं क्षुद्रान् स्तम्भय २ रक्षां कुरु कुरु स्वाहा।

(विधि) श्रद्धापूर्वक ऋद्धि-मंत्र की आराधना करने से शत्रु का शौर्य नष्ट होता है ॥३०॥

अर्थ—हे चामराधिपते ! जिस पर देवों द्वारा सफेद चँवर ढोरे जा रहे हैं ऐसा आपका सुवर्णमय शरीर ऐसा सुहावना मालूम होता है, जैसा झरने के सफेद जल से शोभित सुमेरु पर्वत का तट। यह (चामर प्रातिहार्य) का वर्णन है ॥३०॥

ॐ ह्रीं चतुःषष्टिचामरप्रातिहार्ययुक्ताय क्लींमहाबीजाक्षर
सहिताय श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यंम्।

Thy gold-lustred body, to which grace has been imparted by the waving chawries which is as white as the Kunda-flower, shines like the high golden baow of Sumeru-mountain, on which do fall the streams of rivers which are bright with (like) the rising moon. 30.

राज्य सम्मानदायक

छत्रत्रयं तव विभाति शशाङ्ककान्त—
मुच्चैः स्थितं स्थगितभानुकरप्रतापम्।
मुक्ताफल - प्रकर - जाल - विवृद्ध - शोभं,
प्रख्यापयत् त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥३१॥

त्रैलोक्यराज्यं कथितं प्रमाणं, क्षत्रत्रयं शत्रसमानकान्ति।
मुक्ताफलैः संयुतकं सुशोभं, विराजते नाथ ! तवोपरिष्टात्॥

चन्द्र-प्रभा सम झल्लरियों से, मणि-मुक्तामय अति कमनीय।
दीप्तिमान् शोभित होते हैं, सिर पर छत्रत्रय भवदीय॥
ऊपर रह कर सूर्य-रश्मि का, रोक रहे हैं प्रखर - प्रताप।
मानों वे घोषित करते हैं, त्रिभुवन के परमेश्वर आप॥३१॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं नमो घोरगुणपरक्कमाणं।

(मंत्र) ॐ उवसग्गहरं पासं वंदामि कम्मघणमुक्कं विसहर विसणिण्णासिणं मंगलकल्लाणावासं ॐ ह्रीं नमः स्वाहा।

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धि-मंत्र को जपने से राज्य-मान्यता होती है और हर जगह सम्मान प्राप्त होता है॥३१॥

अर्थ—हे छत्रत्रयाधिपते ! आपके शिर पर सुशोभित, चन्द्र के समान रमणीय, सूर्य की किरणों के सन्ताप का रोधक और रत्नों के जड़ाव से सुशोभित "छत्रत्रय" आपके तीनों लोकों के स्वामीपन को प्रकट करता है। यह छत्रत्रय प्रातिहार्य है॥३१॥

ॐ ह्रीं क्षत्रत्रयप्रातिहार्ययुक्ताय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम्।

The three umbrellas charming like the moon, which are held high above Thee, and the beauty of which has been enhanced by the net-work of pearls and which obstructs the heat of the sun's rays, looks very beautiful, proclaiming, as it were. Thy supreme lordship over all the three worlds. 31.

संग्रहणी-संहारक

गम्भीरतार - रवपूरित - दिग्विभाग—
स्त्रैलोक्यलोक - शुभसङ्गम - भूतिदक्षः।

सद्धर्मराजजय - घोषरण - घोषकः सन्,
खे दुन्दुभि र्ध्वनति ते यशसः प्रवादी

वादित्रनादो ध्वनतीह लोके,
घनाघनध्वान - समप्रसिद्धः ।
आज्ञां त्रिलोके तव विस्तराप्तां,
पूज्यां करोम्यत्र जिनेश्वरस्य ।।

ऊँचे स्वर से करने वाली, सर्व दिशाओं में गुञ्जन ।
करने वाली तीन लोक के, जन-जन का शुभ-सम्मेलन ।।
पीट रही है डंका-"हो सत् धर्म"-राज की ही जय-जय ।
इस प्रकार बज रही गगन में, भेरी तव यश की अक्षय ।।३२।।

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरवंभचारिणं ।

(मंत्र) ॐ नमो ह्रां ह्रीं ह्रू ह्रः सर्वदोषनिवारणं कुरु कुरु स्वाहा ।

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धि-मंत्र द्वारा कुंआरी कन्या के हाथ से काते गये सूत को मंत्रित कर गले में बांधने से संग्रहणी तथा उदर की भयानक पीड़ा दूर होती है ।।३२।।

अर्थ—हे दुन्दुभिपते ! अपने गम्भीर और उच्च शब्द से दिशाओं का व्यापक, त्रैलोक्य के प्राणियों को शुभसमागम की विभूति प्राप्त कराने में दक्ष और जैनधर्म के समीचीन स्वामी जिनदेव का यशोगान करने वाला "दुन्दुभि" बाजा आपका सुयश प्रगट कर रहा है । यह (दुन्दुभि प्रातिहार्य) का वर्णन है ।।३२।।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यवशाविधायिने क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ।

There sounds in the sky the celectial daum, which fills the directions with its deep and loud note, and which is capable of bestowing glory and prosperity on all the beings of the three worlds, and which proclaims the victory-sound of the lord of supreme righteousness, proclaiming Thy fame. 32.

सर्व ज्वरसंहारक

मन्दार - सुन्दर - नमेरु - सुपारिजात—
सन्तानकादि - कुसुमोत्कर - वृष्टिरुद्धा ।
गन्धोदबिन्दुशुभ — मन्दमरुत्प्रपाता,
दिव्या दिवः पतति ते वचसां तति र्वा ॥३३॥

मन्दार-कल्पद्रुम-पारिजात-चम्पाब्ज-सन्तानक-पुष्पवृष्टिः ।
मरुत्प्रयाता जलविन्दुयुक्ता, यस्य प्रभावाच्च तमर्चयामि ॥

कल्पवृक्ष के कुसुम मनोहर, पारिजात एवं मंदार ।
गन्धोदक की मन्द वृष्टि कर-ते हैं प्रमुदित देव उदार ॥
तथा साथ ही नभ से वहती, धीमी धीमी मन्द पवन ।
पंक्ति वांध कर विखर रहे हों, मानों तेरे दिव्य-वचन ॥३३॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताणं ।

(मंत्र) ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लूं ध्यानसिद्धि-परमयोगीश्वराय नमो नमः स्वाहा ।

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धि-मन्त्र द्वारा कच्चे धागे को मंत्रित कर हाथ में वांधने से इकतरा, तिजारी, तापज्वर आदि सब रोग दूर होते हैं ॥३३॥

अर्थ—हे कुसुमवर्षाधिपते ! आकाश से कल्पवृक्षों के फूलों की सुगन्धित जल और मन्द मन्द हवा के साथ जो ऊर्ध्वमुखी और देवकृत वर्षा होती है वह आपकी मनोहर वचनावली के समान शोभायमान होती है। (यह पुष्पवृष्टि प्रातिहार्य) का वर्णन है ॥३३॥

ॐ ह्रीं समस्तपुष्पजातिवृष्टिप्रातिहार्याय क्लींमहावीजाक्षरस हिताय श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥३३॥

Like Thy divine utterances falls from the sky the shower of celestial flowers such as the Mandara, Nameru, Parijata and Santanaka accompanied by gentle breeze that is made charming with scented water drops. 33.

गर्भ संरक्षक

शुम्भत्प्रभा - वलय भूरि-विभा विभोस्ते,
लोकत्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती ।
प्रोद्यद्दिवाकरनिरन्तरभूरिसंख्या—
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सौमसौम्याम् ॥३४॥

भाममण्डलं सूर्यसहस्रतुल्यं,
चक्षुर्मनोऽह्लादकरं नराणाम् ।
सम्बाधिताज्ञान—तमोवितानं,
तत्संयुतं देव ! सुपूजयामि ॥

तीन लोक की सुन्दरता यदि, मूर्तिमान बनकर आवे ।
तन-भा-मंडल की छवि लखकर, तव सन्मुख शरमा जावे ॥
कोटिसूर्य के ही प्रताप सम, किन्तु नहीं कुछ भी आताप ।
जिनके द्वारा चन्द्र सुशीतल, होता निष्प्रभ अपने आप ॥३४॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो खिल्लोसहिपत्ताणं ।

(मंत्र) ॐ नमो ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं ह्रौं पद्मावत्यै नमो नमः स्वाहा ।

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धि-मंत्र कच्चे धागे से मंत्रित कर कमर में बांधने से असमय में गर्भ का पतन नहीं होता ।।३४।।

अर्थ—हे भामण्डलाधिपते ! आपके भामण्डल की प्रभा यद्यपि कोटिसूर्य के समान तेजोयुक्त है तथापि सन्ताप करने वाली नहीं है। चन्द्र के समान सुन्दर होने पर भी कान्ति से रात्रि को जीतती है—अर्थात् रात्रि का अभाव करती है। यह "भामण्डलप्रातिहार्य" का वर्णन है ।।३४।।

ॐ ह्रीं कोटिभास्करप्रभामंडितभामण्डलप्रातिहार्याय क्लींमहा
वीजाक्षरसहिताय श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ।।३४।।

Effulgence. surpasses lustre or all the luminaries in the world; and though it (Thine halo) is made up of the radiance of many suns rising simultaneously, yet it outshines the night dacorated with the gentle lustre of the moon. 34.

ईति-भीति-निवारक

स्वर्गापवर्ग - गममार्ग - विमार्गणेष्टः,
सद्धर्म-तत्त्व - कथनैक - पटुस्त्रिलोक्याः ।
दिव्यध्वनि र्भवति ते विशदार्थसर्व—
भाषास्वभाव - परिणाम-गुणैः प्रयोज्य ।।३५।।

दिव्यध्वनि योजनमात्रशब्दः,
गम्भीरमेघोद्भव—गर्जनाकः ।
सर्वप्रभाषात्मक—धीरनादः,
यः संस्तुतः देव ! तवास्य भूतः ।।

मोक्ष-स्वर्ग के मार्ग प्रदर्शक, प्रभुवर तेरे दिव्य-वचन।
करा रहे हैं 'सत्य-धर्म' के, अमर-तत्त्व का दिग्दर्शन ॥
सुनकर जग के जीव वस्तुतः, कर लेते अपना उद्धार।
इस प्रकार परिवर्तित होते, निज-निज भाषा के अनुसार ॥३५॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो जल्लोसहिपत्ताणं।

(मंत्र) ॐ नमो जयविजयापराजितमहालक्ष्मीः अमृतवर्षिणी अमृतस्राविणी अमृतं भव भव वषट् स्वधा स्वाहा।

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धिमंत्र की आराधना से चोरी, मारी, मृगी, दुर्भिक्ष, राजभय आदि नष्ट हो जाते हैं ॥३५॥

अर्थ—हे दिव्यध्वनिपते! आपकी दिव्यध्वनि स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग बतलाती है, सब जीवों को धर्मतत्त्व (हित) का उपदेश देती है। और समस्त श्रोताओं की भाषाओं में बदल जाती है। अर्थात् जो प्राणी जिस भाषा का जानकार होता है, आपकी दिव्य ध्वनि उसके कान के पास पहुँचकर उसी भाषारूप हो जाती है। (यह दिव्यध्वनि प्रातिहार्य का वर्णन है) ॥३५॥

ॐ ह्रीं जलधरापटलगर्जितसर्वभाषात्मकयोजनप्रमाणदिव्यध्वनि
प्रातिहार्याय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥३५॥

Thy divine voice, which is sought by those who wish to tread the path of emancipation leading to Heaven and Salvation and which alone can expound the truth of the supreme religion, is endowed with those natural qualities which transform it (Divya-dhwani) into all the languages capable of clear meaning. 35.

लक्ष्मीदायक

उन्निद्रहेमनवपङ्कज–पुञ्जकान्ती,
पर्युल्लसन्नखमयूख––शिखाभिरामौ ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः,
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३६॥

विहारकाले रचयन्ति देवाः, पद्मानि पादं प्रति सप्त सप्त।
सम्प्राप्य पुण्यं शिवशं व्रजन्ति, तव प्रभावेन करोमि पूजाम् ॥

जगमगात नख जिसमें शोभें, जैसे नभमें चन्द्रकिरण ।
विकसित नूतन सरसीरुहसम, हेप्रभु तेरे विमल चरण ॥
रखते जहां वहीं रचते हैं, स्वर्णकमल, सुरदिव्य ललाम ।
अभिनन्दन के योग्य चरण तव, भक्ति रहे उनमें अभिराम ॥३६॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो विप्पोसहिपत्ताणं ।

(मन्त्र) ॐ ह्रीं श्रीं कलिकुण्डदण्डस्वामिन् आगच्छ आगच्छ आत्ममंत्रान् आकर्षय, आकर्षय आत्ममंत्रान् रक्ष रक्ष, परमत्रान् छिन्द छिन्द मम समीहितं च कुरु कुरु स्वाहा ।

(विधि) श्रद्धासहित १२०० ऋद्धिमन्त्र का जाप करने से सम्पत्ति का लाभ होता है ॥३६॥

अर्थ—हे पूज्यपाद ! धर्मोपदेश देने के लिये जब आप आर्यखण्ड में विहार करते हैं, तब देवगण आपके चरणों के नीचे कमलों की रचना करते हैं ॥३६॥

ॐ ह्रीं पादन्यासे पद्मश्रीयुक्ताय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥३६॥

दुष्टता प्रतिरोधक

इत्थं यथा तव विभूतिभूज्जिनेन्द्र !,
धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य ।
यादृक्प्रभा दिनकृत: प्रहतान्धकारा,
तादृक्कुतो ग्रहगणस्य विकासनोऽपि ॥३७॥

लक्ष्मी विभो देव ! यथा तवास्ति,
तथा न हर्यादिषु नायकेषु ।
तेजो यथा सूर्यविमानकस्य,
तारागणस्य प्रभवतीह नो वा ॥३७॥

धर्म-देशना के विधान में, था जिनवर का जो ऐश्वर्य ।
वैसी क्या कुछ अन्य कुदेवों, में भी दिखता है सौन्दर्य ॥
जो छवि घोर-तिमिर के नाशक, रवि में है देखी जाती ।
वैसा ही क्या अतुल कान्ति, नक्षत्रों में लेखी जाती ॥३७॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताणं ।

(मंत्र) ॐ नमो भगवते अप्रतिचक्रे ऐं क्लीं ब्लूं ॐ ह्रीं मनोवांछितसिद्धयै नमो नमः । अप्रतिचक्रे ह्रीं ठः ठः स्वाहा ।

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धि-मंत्र द्वारा थोड़ासा जल मंत्रित कर मुंह पर छींटा देने से दुर्जन पुरुष वश में हो जाया करते हैं और उनकी जवान वन्द हो जाती है ॥३७॥

अर्थ—हे समवसरणाधिपते ! धर्मोपदेश के समय समवसरणादिक जैसी विभूति आपको प्राप्त हुई, वैसी विभूति अन्य किसी देव को प्राप्त नहीं हुई । ठीक ही है कि जैसी कान्ति सूर्य को होती है वैसी कान्ति शुक्र आदि ग्रहों को प्राप्त हो सकती है क्या ? अर्थात् नहीं ॥३७॥

ॐ ह्रीं धर्म्मोपदेशसमये समवसरणादिलक्ष्मीविभूतिविराजमानाय क्लींमहावीजाक्षरसहिताय श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥३७॥

The glory, which Thou attained at the time of giving *instruction in religious matters, is* attained, O Jinendra! by nobody else. How can the lustre of the shininig planets and stars be so (bright) as the darkness-destroying effulgence of the sun ? 37.

हस्तिमदभंजक तथा वैभववर्द्धक

श्च्योतन्मदाविल - विलोल - कपोलमूल–
मत्तभ्रमद्भ्रमर - नाद - विवृद्ध - कोपम् ।
ऐरावताभमिभमुद्धत – मापतन्तं
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ।३८।

मत्तोऽपि हस्ती मदलीलया च,
नायाति नाम्ना निवसन्मुखे हि
संसारपाथोनिधितारकस्य,
देवाधिदेवस्य जिनस्य कर्त्तुः ॥३८॥

लोल कपोलों से झरती है, जहाँ निरन्तर मद की धार।
होकर अति मदमत्त कि जिस पर, करते हैं भौंरे गुंजार॥
क्रोधासक्त हुआ यों हाथी, उद्धत ऐरावत सा काल।
देख भक्त छुटकारा पाते, पाकर तव आश्रय तत्काल॥३८॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो मणवलीणं।

(मंत्र) ॐ नमो भगवते महानागकुलोच्चाटिनी कालदष्टमृतकोपस्थापिनी परमंत्रप्रणाशिनी देवि-देवते ह्रीं नमो नमः स्वाहा।

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धि-मंत्र का आराधन करने से हस्ति का मद नष्ट होता है और अर्थप्राप्ति होती है ।।३८।।

अर्थ—हे अभयप्रद ! जो प्राणी आपकी शरण लेते हैं; वे मदोन्मत्त, उच्छृङ्खल, आक्रमणकारी और अवश हाथी को देख कर भी भयभीत नहीं होते ।।३८।।

ॐ ह्रीं हस्त्यादिगर्वदुद्धरभयनिवारणाय क्लींमहावीजाक्षर
सहिताय श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ।।३८।।

Those, who have resorted to You, are not afraid even at the sight of the Airavata-like infuriated elephant, whose anger has been increased by the buzzing sound of the intoxicated bees hovering about its cheeks soiled with the flowing rut, and which rushes forward. 38.

सिंहशक्ति—संहारक

भिन्नेभकुम्भ - गलदुज्ज्वल - शोणिताक्त—
मुक्ताफल - प्रकर - भूषित - भूमिभागः ।
बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि,
नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ।।३९।।

उत्तुङ्ग—पुच्छेन विराजमानः,
आरक्तनेत्रैः रदनै विशिष्टः।
कौ केशरी देव ! सुनाममात्रात्,
करोति क्रीडां तु विडालवत्सः ।।३९।।

क्षत-विक्षत कर दिये गजों के, जिसने उन्नत गण्डस्थल ।
कांतिमान् गज-मुक्ताओं से, पाट दिया हो अवनी-तल ।।

जिन भक्तों को तेरे चरणों, के गिरि की हो उन्नत ओट।
ऐसा सिंह छलांगें भरकर, क्या उसपर कर सकता गोट? ॥३९॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं णमो वचनबलीणं।

(मंत्र) ॐ नमो एषु दत्तेषु वर्द्धमान तव भयहरं वृत्ति वर्णा येषु मंत्राः पुनः स्मर्तव्या अतोना परमंत्रनिवेदनाय नमः स्वाहा। (!)

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धि-मंत्र का आराधन करने से जङ्गल का राजा सिंह भी परास्त हो जाता है। और सर्प का भय भी नहीं रहता।

अर्थ—हे परमशांतिदायक देव! जिसने मदोन्मत्त हस्तियों के उन्नत गण्डस्थलों को अपने नुकीले नाखूनों से क्षत-विक्षत करके उनसे निकलने वाले रुधिर से सने गज-मुक्ताओं को बिखेर कर अवनीतल को अलंकृत कर दिया और अपने शिकार पर छलांग भरकर आक्रमण करने के लिये उद्यत ऐसे दहाड़ते हुए खूंखार सिंह के पंजों के बीच पड़े हुए आपके परम भक्तों पर वह वार नहीं कर सकता अर्थात् हिंसक सिंह आपके भक्त के समक्ष अपनी स्वाभाविक क्रूरता को भी छोड़ देता है। ३९

ॐ ह्रीं युगादिदेवनामप्रसादात् केशरिभयविनाशकाय क्लीं
महाबीजाक्षरसहिताय श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥३९॥

Even the lion, which has decorated a part of the earth with the collection of pearls besmeared with bright blood flowing from the pierced heads of the elephants though ready to pounce, *does not attack the traveller who has resorted to the mountain of Thy feet. 39.*

सर्वाग्नि शामक

कल्पान्तकाल — पवनोद्धतवह्निकल्पं,
दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिङ्गम्।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तं,
त्वन्नामकीर्तनजलं शमयत्यशेषम् ॥४०॥

त्वन्नामतोयेन कृता सुधारा,
वह्निप्रतापं हरति क्षणेसा।
भवाग्नितापप्रलयङ्करस्त्वं,
अतस्तवेष्टिं विदधे वराध्यैं: ॥४०॥

प्रलय काल की पवन उठाकर, जिसे वढ़ा देती सब ओर।
फिकें फुलिंगे ऊपर तिरछे, अङ्गारों का भी होवे जोर॥
भुवनत्रय को निगला चाहे, आती हुई अग्नि भभकार।
प्रभु के नाम-मन्त्र जल से वह, बुझ जाती है उसही बार ॥४०॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो कायवलीणं।

(मंत्र) ॐ ह्रीं श्रीं ह्रां ह्रीं अग्नेः उपशमं कुरु २ स्वाहा।

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धि-मंत्र का आराधन करने से अग्नि का भय मिट जाता है ॥४०॥

अर्थ—हे लोकपालक! आपके गुणगान से भयङ्कर तथा वेग से वढ़ता हुआ दावानल भी भक्तजनों का कुछ भी विगाड़ नहीं कर सकता ॥४०॥

ॐ ह्रीं संसाराग्नितापनिवारणाय क्लींमहावीजाक्षरसहिताय श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥४०॥

The conflagration of the forest, which is equal to the fire fanned by the winds of the doomsday and which emits bright burning sparks and which advances forward as if to devour the world, is totally extinguished by the recitation of Thy neme. 40.

भुजंग (सर्प) भय भंजक

रक्तेक्षणं समद-कोकिल-कण्ठ-नीलं,
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम् ।
आक्रामति क्रमयुगेन निरस्तशङ्क—
स्त्वन्नाम-नागदमनी हृदि यस्य पुंसः ॥४१॥

क्रोधेन युक्तः फणिराजसर्पः,
क्रोधं परित्यज्य प्रलापवान्सः ।
करोति दूरं वरदेवनाम्ना,
नानाविधप्राणनिधानदानात् ॥४१॥

कंठ कोकिला सा अति काला, क्रोधित हो फण किया विशाल ।
लाल-लाल लोचन करके यदि, झपटै नाग महा विकराल ॥
नाम–रूप तव अहि-दमनी का, लिया जिन्होंने हो आश्रय ।
पग रख कर निशङ्क नाग पर, गमन करें वे नर निर्भय ॥४१॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो खीरसवीणं ।

(मंत्र) ॐ नमो श्रां श्रीं श्रूं श्रः जलदेवि कमले कमले पद्म-हृदनिवासिनि पद्मोपरिसंस्थिते सिद्धि देहि मनोवांछितं कुरु २ स्वाहा ।

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धि मंत्र जपने और झाड़ने से सर्प का विष उतर जाता है । ॥४१॥

अर्थ—हे सातिशय नाम वाले देव ! आपके पापविमोचक, पुण्य-वर्द्धक शुभनामरूपी नागदमनी (जड़ी-बूटी) को भक्तिसहित गाढ़श्रद्धा-पूर्वक अन्तःकरण में धारण करने वाले मानव उस भयंकर उद्धत फुंकार करते हुए जहरीले नाग को भी निर्भय होकर रोंधते हुए चले जाते हैं; कि जिसके नेत्र धधकते हुए अंगारे की तरह आरक्त वर्ण हो

रहे हों और जो काली कोयल के कंठ समान काला हो तथा जो क्रोधोन्मत्त होकर विशाल फण फैलाये डसने के लिए अतिशीघ्रता से पवनवेग सा झपटता चला आता हो ॥४१॥

ॐ ह्रीं त्वन्नामनागदमनीशक्तिसम्पन्नाय क्लींमहावीजाक्षर-
सहिताय श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् । ४१

The man, in whose heart abides the Mantra that subdues serpents, viz, Your name, can interpidly go near the skae, which has its hood expanded, eyes blood-shot, and which is haughty with anger and black like the throanof the passionate cuckoo. 41.

युद्धभय विध्वंसक

वल्गत्तुरंग—गजगर्जित—भीमनाद—
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम् ।
उद्यद्दिवाकरमयूख—शिखापविद्धं,
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशुभिदामुपैति ॥४२॥

संङ्ग्रामभूमौ मृतभूरिजीवे,
मातङ्ग—चक्राश्वपदातिमध्ये ।
सुखेन चायान्ति विजित्य शत्रून्,
सदा मनोऽब्जे मुदितो यजे तम् ॥४२॥

जहाँ अश्व की और गजों की, चीत्कार सुन पड़ती घोर ।
शूरवीर नृप की सेनाएँ, रव करती हों चारों ओर ॥
वहाँ अकेला शक्तिहीन नर, जप कर सुन्दर तेरा नाम ।
सूर्य-तिमिर सम शूर—सैन्य का, कर देता है काम तमाम ॥४२॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो सप्पिसवाणं।

(मंत्र) ॐ नमो नमिऊणविषप्रणाशनरोगशोकदोषग्रहकप्प-दुमच्चजाई सुहनाक—गहणसकलसुहदे ॐ नमः स्वाहा। (!)

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धि-मंत्र की आराधना से भयङ्कर युद्ध का भय मिट जाता है ॥ ४२ ॥

अर्थ—हे वृषभेश्वर ! इस प्रकार जो विवेकशील बुद्धिमान् पुरुष आपके इस पवित्र स्तोत्र का रात-दिन श्रद्धासहित चिन्तवन, अध्ययन, आराधन और मनन करते हैं, उनके मदोन्मत्त हाथी, विकराल सिंह, भभकता दावानल, भयंकर सर्प, वीभत्स संग्राम, विक्षुब्ध समुद्र, शस्त्र-प्रहार और बन्धनजनित भय भी भयाकुल होकर अतिशीघ्र नष्ट हो जाते हैं। और फिर आपके भक्तजनों की ओर लौटकर वार नहीं करते ॥४२॥

ॐ ह्रीं संग्राममध्ये क्षेमङ्कराय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥४२॥

Like the Darkness dispelled by the luster of the rays of the rising sun, the army. accompanid by the loud roar of the prancing horses and elephants, even of powerful kings, is dispersed in the battle-field with the mere recita-ion of Thy name. 42.

सर्व शान्तिदायक

कुन्ताग्रभिन्न-गजशोणित - वारिवाह,
वेगावतार - तरणातुर - योध-भीमे।
युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षाः,
त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिणो लभन्ते ॥४३॥

दन्ताग्रभिन्नेषु सुमस्तकेषु,
परस्परं यत्र गजाश्वयुद्धे।
मनुष्य आयाति सुकौशलेन,
त्वान्नाममन्त्रस्मरणाञ्जिनेश ॥४३॥

रण में भालों से वेधित गज, तन से बहता रक्त अपार।
वीर लड़ाकू जहँ आतुर हैं, रुधिर-नदी करने को पार॥
भक्त तुम्हारा हो निराश तहँ, लख अरिसेना दुर्जयरूप।
तव पादारविन्द पा आश्रय, जय पाता उपहार-स्वरूप ॥४३॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो महुरसवाणं।

(मंत्र) ॐ नमो चक्रेश्वरी देवी चक्रधारिणी जिनशाशनसेवा-कारिणी क्षुद्रोपद्रवविनाशिनी धर्मशान्तिकारिणी इष्टसिद्धि कुरु २ स्वाहा।

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धि-मंत्र जपने से भय मिटता है और सब प्रकार की शान्ति प्राप्त होती है ॥४३॥

अर्थ—हे दुर्जेयशत्रुमानभञ्जक देव ! जिस महासमर में बरछों की नुकीली नोंकों से वेधे गये हाथियों के विशालकाय शरीर से निःसृत, रक्त रूपी अमर्यादित जल-प्रवाह के वहाव में वहते हुये, उसे तैर कर अवि-लम्ब विजय प्राप्त करने के लिये अधीर वीर योद्धाओं से जो प्रचण्ड युद्ध हो रहा है; एसे महायुद्ध में आपके पुनीत पादपद्मों की पूजा करने वाले भक्तजन अजेय शत्रु का अभिमान चूर २ कर बड़ी शान के साथ विजयपताका फहराते हुए आनंद विभोर हो जाते हैं ॥४३॥

ॐ ह्रीं वनगजादिभयनिवारणाय क्लींमहावीजाक्षरसहिताय
श्रीवृषभजिनाय अर्घ्यम् ॥४३॥

Those, who resort to Thy louts-feet, get victory by defeating the invincibly victorious side (of the enemy) in

the battle-field made terrible with warriors, engaged in crossing speedily the flowing currents of the river of the blood-water of the elephants pierced with the pointed spears, 43,

सर्वापत्तिविनाशक

अम्भोनिधौ क्षुभितभीषण - नक्रचक्र—
पाठीनपीठ - भयदोल्वण - वाडवाग्नौ ।
रङ्गत्तरङ्ग शिखरस्थित – यानपात्रा–
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ।।४४।।

कल्पान्तवातेन गतं विकारं,
सचक्रमक्रादिकजीवपूर्णं ।
अब्धि समुत्तीर्य नरो भुजाभ्यां,
प्रयाति शीघ्रं तव पादचित्तः ।।४४।।

वह समुद्र कि जिसमें होवें, मच्छ मगर एवं घड़ियाल ।
तूफां लेकर उठती होवें, भयकारी लहरें उत्ताल ।।
भ्रमर-चक्र में फँसी हुई हो, वीचों वीच अगर जल-यान ।
छुटकारा पा जाते दुख से, करने वाले तेरा ध्यान ।।४४।।

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो अमयसवीणं ।

(मंत्र) ॐ नमो रावणाय विभीषणाय कुम्भकरणाय लङ्काधिपतये महाबलपराक्रमाय मनश्चिन्तितं कुरु २ स्वाहा (!)।

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धि-मंत्र की आराधना से सब प्रकार की आपत्तियाँ हट जाती हैं ।।४४।।

अर्थ—हे भक्तवत्सल ! आपके निष्कलङ्क अनन्त गुणों का वारम्बार चिन्तवन करने वाले शरणागत मानवों के विकराल मुँह फैलाये हुए इधर-उधर लहराते विशालकाय मच्छ मगर आदि जल जन्तुओं से ओत-प्रोत और भयावनी वडवाग्नि से विक्षुब्ध हो रहे समुद्र की तूफानी लहरों में डगमगाते जल-पोत बिना विपत्ति के निर्भयतापूर्वक अपारपारावार से पार हो जाते हैं। अर्थात् आपके स्मरण से भक्तों पर आई हुई आकस्मिक आपत्तियां अविलम्ब विलीन हो जाती हैं ॥४४॥

ॐ ह्रीं संसाराब्धितारणाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥४४॥

Even on that ocean, which contains the dreadful submarine fire, the agitated and therefore, terrific alligators and fishes fearlessly move those, though their ships are placed on high dashing waves, who but remember Thee, 44.

जलोदरादिरोग एवं सर्वापत्तिहारक

उद्भूतभीषण - जलोदर - भारभुग्नाः,
शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशाः ।
त्वत्पादपङ्कजरजोमृतदिग्धदेहाः,
मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ॥४५॥

जलोदरैः कुष्टकुशूलरोगैः,
शिरोव्यथा - व्याधिबहुप्रकारैः ।
सुपीडितानां भवतिक्षणे हि,
विरोगिता त्वत्स्मरणात्प्रभोऽत्र ॥४५॥

असहनीय उत्पन्न हुआ हो, विकट जलोदर पीड़ा भार।
जीने की आशा छोड़ी हो, देख दशा दयनीय अपार ॥
ऐसे व्याकुल मानव पाकर, तेरी पद – रज संजीवन ।
स्वास्थ्य-लाभकर बनता उसका, कामदेव सा सुन्दर तन ॥४५॥

(ऋद्धि) ॐ अर्हं णमो अक्खीणमहाणसाणं ।

(मंत्र) ॐ नमो भगवती क्षुद्रोपद्रवशान्तिकारिणी रोगकुष्टज्वरोपशमं (शान्ति) कुरु २ स्वाहा ।

(विधि) श्रद्धासहित ऋद्धि-मंत्र की आराधना से समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं तथा उपसर्ग आदि का भय नहीं रहता ॥४५॥

अर्थ—हे पूज्यपाद ! जैसे अमृत के लेप से मनुष्य निरोग और सुन्दर हो जाता है, उसी प्रकार आपके चरणकमल के रजरूपी अमृत के लेप से (चरणों की सेवा) से भीषण जलोदर आदि रोगों से पीड़ित मनुष्य भी कामदेव के समान सुन्दर हो जाते हैं ॥४५॥

ॐ ह्रीं दाहतापजलोदराष्टदशकुष्टसन्निपातादिरोगहराय क्लीं
महाबीजाक्षरसहिताय श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥४५॥

Even those, who are drooping with the weight of terrible dropsy and have given up the hope of life and have reached a deplorable conditon, become as beautiful as Cupid by besmearing their bodies with the nectarlike pollen dust of Thy lotus-feet. 45.

बन्धन विमोक्षक

आपादकण्ठ — मुरुश्रृङ्खलवेष्टिताङ्गाः,
गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजङ्घाः ।
त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः,
सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति ॥४६॥

केनापि दुष्टेन नृपेण धर्मी,
सम्बन्धितः श्रृङ्खलया नरश्च ।
स त्वां जवं मुञ्चति बन्धतोऽद्य,
संसारपाशप्रलयं नमामि ॥४६॥

लोह-शृङ्खला से जकड़ी है, नख से शिख तक देह समस्त ।
घुटने-जंघे छिले बेड़ियों, से अधीर जो हैं अतित्रस्त ॥
भगवन ऐसे बन्दीजन भी, तेरे नाम-मन्त्र की जाप ।
जप कर गत-बन्धन हो जाते, क्षणभर में अपने ही आप ॥४६॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो वड्ढमाणाणं ।

(मंत्र) ॐ नमो ह्रां ह्रीं ह्रू ह्रः क्षः श्रीं ह्रीं फट् स्वाहा ।

(विधि) श्रद्धासहित प्रतिदिन ऋद्धिमंत्र को १०८ वार जपने से शत्रु वश में होता है, विजयलक्ष्मी प्राप्त होती है और शस्त्रादि के घाव शरीर में नहीं हो पाते ॥४६॥

अर्थ—हे महामहिम ! लोहे की बड़ी २ वजनदार सांकलों से जिनके शरीर के समस्त अवयव शिर से लेकर पांव तक बहुत ही मजबूती से जकड़े हुये हैं और हाथों पैरों में कड़ी दो लोहशलाकों की बेड़ियों के पड़े रहने से निरन्तर उनकी बार बार रगड़ से घुटने और जंघायें छिल गई हैं, ऐसे लोह शृङ्खलावद्ध मानव भी आपके शुभ नाम-रूपी पाप-विनाशक पवित्र मंत्र का सत्य हृदय से स्मरण कर क्षणभर में अपने आपही बंधन की कठोर यातना से छुटकारा पाकर निर्द्वन्द और निर्भय हो जाते हैं ॥४६॥

ॐ ह्रीं नानाविधकठिनबन्धनदूरकरणाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥४८॥

By muttering day-and-night the sacred syllables of Thy name, even those, whose bodies are fettered from head to feet by heavy chains and whose shanks are lacerated by the night gyves, instantaneously get rid of the fear of their bondage 46.

अस्त्रशस्त्रादिशक्ति निरोधक

मत्तद्विपेन्द्र - मृगराज - दवानलाहि,
संग्रामवारिधिमहोदरवन्धनोत्थम् ।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव,
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ।।४७।।

रोगज्वराः कुष्टभगन्दराद्याः,
जलाग्निघोरा विविधाश्च विघ्नाः ।
शीघ्रं क्षय यान्ति जिनेशनाम,
सञ्जप्यमानस्य नरस्य पुण्यात् ।।४७।।

वृषमेश्वर के गुण स्तवन का, करते निशिदिन जो चिंतन ।
भय भी भयाकुलित हो उनसे, भग जाता है हे स्वामिज ।।
कुंजर-समर-सिंह-शोक-रुज, अहि दावानल कारागार ।
इनके अतिभीषण दुःखों का, हो जाता क्षण में संहार ।।४५।।

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो वड्ढमाणं ।

(मंत्र) ॐ नमो ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः ठः ठः जः जः क्षां क्षीं क्षूं क्षौं क्षः यः स्वाहा ।।४७।।

कवित्वहीनो मतिशास्त्रहीनो,
भक्त्यैकया प्रेरितसोमसेनः ॥४८॥

हे प्रभु तेरे गुणोद्यान की, क्यारी से चुन दिव्य-ललाम ।
गूंथी विविध वर्ण सुमनों की, गुण-माला सुन्दर अभिराम ॥
श्रद्धासहित भविकजन जो भी, कण्ठाभरण वनाते हैं ।
मानतुङ्ग-सम निश्चित सुन्दर, मोक्ष-लक्ष्मी पाते हैं ॥४८॥

(ऋद्धि) ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वसाहूणं ।

(मंत्र) महतिमहावीरवड्ढमाणबुद्धिंसीणं ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ भ्रौं भ्रौं स्वाहा ।

(विधि) श्रद्धासहित ४६ दिन तक १०८ वार ऋद्धि-मंत्र जपने मनोवांछित समस्त कार्यों की सिद्धि होती है ॥४८॥

अर्थ—जैसे पुष्पमाला धारण करने से मनुष्य को शोभा (लक्ष्मी) प्राप्त होती है उसी प्रकार इस स्तोत्ररूपी माला के पहिनने (सदा पाठ करने) से मनुष्य को परम्परा से मोक्ष-लक्ष्मी प्राप्त होती है ॥४८॥

ॐ ह्रीं सकलकार्यसाधनसामर्थाय क्लींमहाबीजाक्षरसहिताय
श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥४८॥

The Goddess of wealth of her own accord resorts to that man of high self-respect in this world, who alwes place round his neck, O Jinendra. this garland of orisons, weich has been sturng by me with the strings of The excellences out of devotion, and which looks charming on account of the multi-coloured flowers in the shape of beautiful words. 48.

ॐ ह्रीं अर्हं णमो वोहियबुद्धाणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो ऋजुमदीणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो विपुलमदीणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो दसपुव्वीणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो चउदसपुव्वीणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो अट्ठांगमहाकुशलाणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो विउयणयड्ढिपत्ताणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो विज्जाहराणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो चारणाणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो पण्णसमणाणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो आगासगामिणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो आसीविसाणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो दिट्ठिविसाणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो उग्गतवाणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो दित्ततवाणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो तत्ततवाणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो महातवाणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरतवाणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमोघोरगुणाणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्री अर्हं णमो घोरगुणपरक्कमाणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरबंभचारिणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो खिल्लोसहिपत्ताणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो जल्लोसहिपत्ताणं अर्घ्यम् ।

ॐ ह्रीं अर्हं णमो विप्पोसहिपत्ताणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो मणोवलीणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो वचनबलीणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो कायबलीणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो खीरसवीणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो सप्पिसवाणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो महुरसवाणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो अमियसवाणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो अक्खीणमहाणसाणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो वड्ढमाणाणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वसाहूणं अर्घ्यम् ।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं अर्हं श्रीवृषभनाथतीर्थङ्कराय नमः ।

अनेन मंत्रेण लवङ्गैरष्टोत्तरशतं १०८ जाप्यं विधेयम् ।

भक्तामर महाकाव्यमंडल-पूजा जयमाला

(त्रोटक वृत्तम्)

शुभदेश-शुभङ्कर कौशलकं, पुरुपट्टन-मध्य-सरोज-समं ।
नृप-नाभि-नरेन्द्र-सुतं सुधियं, प्रणमामि सदा वृषभादिजिनं ॥
कृत-कारित-मोदन-मोदधरं मनसा वचसा शुभकार्य-परं ।
दुरिता-पहरं चामोद-करं, प्रणमामि सदा वृषभादिजिनं ॥
तव देव सुजन्म-दिने परमं, वरनिर्मित-मङ्गल-द्रव्यशुभं ।
कनकाद्रिसु-पांडुक-पीठगतिं, प्रणमामिसदावृषभादिजिनं ॥

व्रतभूषण-भूरि-विशेष तनुं, करकङ्कण-कञ्जल-नेत्रचणं।
मुकुटाब्ज-विराजित-चारुमुखं,प्रणमामि सदा वृषभादिजिनम्
ललितास्य-सुराजित-चारुमुखं,मरुदेवि-समुद्भव-जातसुखं॥
सुरनाथसुताण्डवनृत्यधरं, प्रणमामि सदा वृषभादिजिनम्॥
वर-वस्त्र-सरोज-गजाश्वपदं, रथ-भृत्यदलं चतुरङ्गजदं।
शिव-भीरु-सुभोग-सुयोगधनं,प्रणमामिसदावृषभादिजिनं॥
गतरागसुदोष-विराग-कृतिं, सुतपोवल-साधितमुक्तिगतिं।
सुख-सागर-मध्य-सदानिलयं,प्रणमामिसदावृषभादिजिनं।
सुसमोसरणे रति-रोगहरं, परिसदृश युग्म सुदिव्य-ध्वनिं।
कृत-केवलज्ञान-विकाशतनं प्रणमामि-सदा वृषभादिजिनं॥
उपदेश-सुतत्त्व-विकाशकरं, कमलाकर-लक्षण पूर्ण-भरं।
भवित्रासित-कर्म-कलङ्कहरं,प्रणमामि सदावृषभादिजिनं॥
जिन! देहि सुमोक्षपदं सुखदं, घनघाति-घनाघन-वायुपदं।
परमोत्सवकारित-जन्म-दिनं,प्रणमामिसदावृषभादिजिनम्

संसार–सागरोत्तीर्णं, मोक्षसौख्य–पदप्रदं।
नमामि सोमसेनार्च्यम्, आदिनाथं जिनेश्वरम्॥

ओं ह्रीं पूजाकर्तुः कर्मनाशनाय आगतविघ्नभयनिवारणाय अर्घ्यम्।

स भवति जिनदेवः पञ्चकल्याणनाथः,
कलिलमलसुहर्त्ता, विश्वविघ्नौघहन्ता॥
शिवपदसुखहेतुः नाभिराजस्य सूनुः,
भवजलनिधिपोतो, विश्वमोक्षाय नाथः॥

इत्याशीर्वादः। परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

दीर्घायुरस्तु शुभमस्तु, सुकीर्तिरस्तु,
सद्बुद्धिरस्तु धनधान्य—समृद्धिरस्तु।
आरोग्यमस्तु विजयोऽस्तु महोऽस्तु पुत्र-
पौत्रोद्भवोऽस्तु तव सिद्धपति-प्रसादात्॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

अथ शान्ति—पाठ

शास्त्रोक्त विधि पूजा महोत्सव, सुरपती चक्री करें।
हम सारिखे लघु पुरुष कैसे, यथाविधि पूजा रचें॥
धन-क्रिया-ज्ञान-रहित न जानें, रीति पूजन नाथ जी।
हम भक्तिवश तुम चरण आगे, जोड़ लीने हाथ जी॥
दुख हरन, मंगल करन, आशाभरन, पूजन जिन सही।
यह चित्त में श्रद्धान मेरे, भक्ति है स्वयमेव ही॥
तुम सारिखे दातार पाये, काज लघु जाचों कहा।
मुझ आप सम कर लेहु स्वामी, यही इक वांछा महा॥
संसार भव-वन विकट में वसुकर्म मिल आतापियो।
तिस दाह से आकुलित चिरतें, शांति-थल कहुँ ना लियो॥
तुम मिले शान्ति स्वरूप शान्ति, सुकरण समरथ जगपती।
वसुकर्म मेरे सान्त करदो, शान्तिमय पंचम-गती॥
जब लों नहीं शिव लहों तव लों, देहु यह धन पावना।
सतसङ्ग शुद्धाचरण श्रुत, अभ्यास आतम भावना॥

तुम विन अनन्तानन्त काल, गयो रुलत जग जाल में ।
अव शरण आयो नाथ युगकर, जोड़ नावत भाल मैं ॥

दोहा—कर-प्रमाण के माप तें, गगन नपै किह भंत ।
त्यों तुम गुण-वर्णन करत, कवि पावे नहिं अंत ॥
टुक अवलोकन आप को, भयो धर्म अनुराग ।
इकटक देखूं नित्य तो, वढ़े ज्ञान वैराग ॥
पन्थी प्रभु मन्थी मथन, कथन तुम्हार अपार ।
करो दया सव पै प्रभो, जामें पावें पार ॥

विसर्जन पाठ

ॐ ह्रीं अस्मिन् भक्तामरमहाकाव्यमंडल-पूजाविधान-कर्मणि आहूयमाना देवगणाः स्वस्थानं गच्छन्तु । अपराधक्षमापणं भवतु ।

आरती

ओम् जय आदिनाथ देवा,
ओम् जय आदिनाथ देवा ॥
सुर नर मुनि गुण गाते,
तुम कैलाशपती कहलाते,
हम दर्शन कर पाप मिटाते,
अन्तर बाहर दीप जलाते,
करते चरणों की सेवा,
ओम् जय आदिनाथ देवा ॥

इति श्री सोमसेनकृत भक्तामरमहामण्डलपूजा समाप्ता ।

भक्तामर स्तोत्र के मन्त्रों की साधनविधि

भक्तामर स्तोत्र के ४८ श्लोकों के जो ४८ मन्त्र हैं उनकी साधन विधि तथा फल क्रमश: नीचे लिखे अनुसार हैं :—

१—प्रतिदिन ऋद्धि और मन्त्र १०८ वार जपने से तथा यन्त्र पास रखने के सब तरह के उपद्रव दूर होते हैं।

२—काले वस्त्र पहन कर, काले आसन पर दंडासन से बैठकर, काली माला से पूर्व दिशा की ओर मुख करके प्रतिदिन १०८ वार ऋद्धि, मंत्र २१ दिन तक अथवा ७ दिन तक प्रतिदिन १००० जपना चाहिये इससे शत्रु तथा शिर पीड़ा नष्ट होती है। यन्त्र पास रखने से नजर वन्द होती है। इन दिनों में एक वार भोजन करना चाहिये तथा प्रतिदिन नमक से होम करना चाहिए।

३—कमलगट्टा की माला से ऋद्धि और मन्त्र ७ दिन तक प्रतिदिन १०८ वार जपना चाहिये। होम के लिये दशांगधूप हो और गुलाव के फूल चढ़ाये जावें। चुल्लू में जल मंत्रित करके २१ दिन तक मुख पर छींटे देने से सब प्रसन्न होते हैं। यन्त्र पास में रखने से शत्रु की नजर वन्द हो जाती है।

४—सफेद माला द्वारा ७ दिन तक प्रतिदिन १००० वार ऋद्धि और मंत्र जपना चाहिये, सफेद फूल चढ़ाना चाहिये। पृथ्वी पर सोना तथा एकाशन करना चहिए। यदि कोई मछली पकड़ रहा हो तो २१ कंकड़ियां लेकर प्रत्येक कंकड़ी ७ वार मंत्र पढ़ कर जल में डाली जावे तो एक भी मछली जाल या कांटे में न आवेगी।

५—पीला वस्त्र पहिन कर सात दिन तक १००० ऋद्धि, मंत्र प्रतिदिन जपना, पीले फूल चढ़ाना तथा कुन्दरू की धूप जलाना चाहिये।

जिसके नेत्र दुखते हों, उसे दिन भर भूखा रखकर बतासे जल में घोल कर पिलाये जावें या नेत्रों पर छींटे दिये जावें तो नेत्र को आराम हो जाता है। मंत्रित जल कुंए में छिड़कने से लाल कीड़े कुंए में नहीं होने पाते। यन्त्र अपने पास रखना चाहिये।

६—२१ दिन तक प्रतिदिन १००० जाप करने से और यन्त्र अपने पास रखने से विद्या प्राप्त होती है। बिछुड़ा हुआ व्यक्ति आ मिलता है। मन्त्र ऋद्धि का जाप लाल वस्त्र पहिन कर करना चाहिए, पृथ्वी पर सोना तथा एक वार भोजन करना चाहिये, लाल फल चढ़ाना चाहिये अथवा कुन्दरू की धूप खेना चाहिये।

७—प्रतिदिन हरी माला से १०८ वार ऋद्धि मन्त्र २१ दिन जपना चाहिये। ऐसा करने से तथा यन्त्र को गले में बांधने से सांप का विष प्रभाव नहीं करता। यदि १०८ वार ऋद्धि मंत्र से कंकड़ी मंत्रित करके सर्प के शिर पर मारी जावे तो सर्प कीलित हो जाता है। लोवान की धूप खेना चाहिये। यन्त्र हरा होना चाहिये।

८—अरीठे रीठा के बीजों की माला के द्वारा २१ दिन तक १००० जाप करने से तथा यन्त्र को अपने पास रखने से सब प्रकार का अरिष्ट दूर होता है। यदि नमक के ७ छोटे टुकड़ों को १०८-१०८ वार मंत्र पढ़कर मंत्रित करके पीड़ायुक्त किसी अंग को झाड़ा जावे तो पीड़ा दूर हो जाती है। घी और दूध खेना चाहिये तथा नमक की डली से होम करना चाहिये।

९—एक सौ आठ वार ऋद्धि मंत्र द्वारा चार कंकड़ियों को मंत्रित करके यदि उनको चारों दिशाओं में फेंका जावे तो चोर डाकू आदि का किसी तरह का भय नहीं रहता।

१०—पीली माला से प्रतिदिन १०८ वार ऋद्धि मंत्र का ७ या १० दिन जाप करने से तथा यन्त्र पास में रखने से कुत्ते के काटने का विष उतर जाता है। नमक की ७ डलियों को, प्रत्येक को १०८ वार मंत्र द्वारा मंत्रित करके खिलाया जाय तो कुत्ते का विष असर नहीं करता। धूप कुन्दरू की होना चाहिये।

११—लाल माला से २१ दिन तक (प्रतिदिन १०८ वार) बैठकर या खड़े रहकर सफेद माला से १०८ वार जपने पर (दीप, धूप नैवेद्य फल लिये हुये) एवं यंत्र अपने पास रखने से जिसे अपने पास बुलाना ो वह आ जाता है। धूप कुन्दरू की हो।

१२—लाल माला से मन्त्र और ऋद्धि का जाप ४२ दिन तक प्रतिदिन १००० करना चाहिये। दशांग धूप खेनी चाहिये। यन्त्र अपने पास रखने तथा मंत्र द्वारा १०८ वार तेल मंत्रित करके हाथी को पिलाने पर हाथी का मद उतर जाता है।

१३—पीली माला के द्वारा ७ दिन प्रतिदिन १००० ऋद्धि मंत्र का जाप करना चाहिये, एक वार भोजन तथा पृथ्वी पर शयन करना चाहिये। यन्त्र पास रखने से तथा ७ कंकड़ी लेकर प्रत्येक को १०८ वार मंत्र से मंत्रित कर चारों दिशाओं में फेंकने से चोरों का भय नहीं रहता, मार्ग में और भी कोई भय नहीं आने पाता।

१४—सात कंकड़ी लेकर प्रत्येक को २१ वार ऋद्धि मंत्र द्वारा मंत्रित करके चारों ओर फेंकने से तथा यन्त्र अपने पास रखने से व्याधि, शत्रु आदि का भय नष्ट हो जाता है, लक्ष्मी प्राप्त होती है तथा वात रोग नष्ट होता है।

१५—ऋद्धि मंत्र द्वारा २१ वार तेल मंत्रित करके उस तेल को मुख पर लगाने से राजदरबार में प्रभाव बढ़ता है, सौभाग्य और लक्ष्मी

की प्राप्ति होती है। १४ दिन तक लाल माला से १००० जाप करना चाहिए। दशांग धूप खेना चाहिये। एक वार भोजन करना चाहिए।

१६—हरी माला से प्रतिदिन १००० ऋद्धि मंत्र का जाप ९ दिन तक करे, कुन्दरू की धूप खेवे। यन्त्र पास में रखने से तथा मंत्र का १०८ वार जाप करने से राजदरवार में प्रतिपक्षी की हार होती है। शत्रु का भय नहीं रहता।

१७—सफेद माला से प्रतिदिन १००० ऋद्धि मंत्र की जाप ७ दिन तक करे, चन्दन की धूप खेवे। यंत्र पास रखने से तथा शुद्ध अछूता जल २१ वार मंत्र कर पिलाने से पेट की असाध्य पीड़ा, वायुशूल, वायुगोला आदि मिट जाते हैं।

१८—लाल माला द्वारा प्रतिदिन ऋद्धि मंत्र का १००० जाप ७ दिन तक करना चाहिये, दशांग धूप खेनी चाहिये, एक वार भोजन करना चाहिये। यंत्र को पास में रखने से तथा १०८ वार जाप करने से शत्रु की सेना का स्तम्भन होता है।

१९—यन्त्र अपने पास रखने से तथा ऋद्धि मंत्र का १०८ वार जाप करने से अपने ऊपर दूसरे के द्वारा प्रयोग किया गया मंत्र प्रयोग, जादू, मूठ, टोटका आदि का प्रभाव नहीं होने पाता, न उच्चाटन का भय रहता है।

२०—यन्त्र को अपने पास रखने से तथा मन्त्र को १०८ वार जपने से सन्तान प्राप्त होती है, लक्ष्मी का लाभ होता है, सौभाग्य बढ़ता है, विजय मिलती है, बुद्धि बढ़ती है।

२१—यन्त्र अपने पास रखने से तथा प्रतिदिन १०८ वार ऋद्धि मन्त्र ४१ दिन तक जपने से सव अपने अधीन हो जाते हैं।

२२—यन्त्र गले में बाँधने से तथा हल्दी की गाँठ को २१ वार मन्त्र द्वारा मंत्रित करके चवाने से भूत, पिशाच, चुड़ैल आदि दूर हो जाते हैं।

२३—पहले १०८ वार मन्त्र जप कर अपने शरीर की रक्षा करे फिर जिसको प्रेत बाधा हो उसे झाड़े, यन्त्र पास रक्खे तो प्रेत-बाधा दूर होती है।

२४—प्रतिदिन १०८ वार मन्त्र जपना चाहिये। २१ वार मन्त्र पढ़ कर राख मंत्रित करके उसे शिर पर लगाने से शिर पीड़ा दूर हो जाती है।

२५—ऋद्धि और मंत्र के जपने से तथा यन्त्र को पास में रखने से धीज उतरती है तथा आराधक पर अग्नि का प्रभाव नहीं होता।

२६—ऋद्धि मंत्र द्वारा १०८ वार तेल मंत्रित करके शिर पर लगाने से तथा यन्त्र अपने पास रखने से आधा शीशी आदि शिर के रोग दूर हो जाते हैं। उस तेल की मालिश करने से तथा मंत्रित जल पिलाने से प्रसूति शीघ्र आसानी से हो जाती है।

२७—काली माला से ऋद्धि मन्त्र का जाप करने से, प्रतिदिन एक वार अलोना भोजन करने से तथा कालीमिर्च से हवन करने पर शत्रु का नाश होता है। ऋद्धि और मन्त्र का जाप करते रहने से तथा यन्त्र अपने पास रखने से मन्त्र आराधना में शत्रु कुछ हानि नहीं पहुँचा सकता।

२८—ऋद्धि मंत्र की आराधना से और यंत्र पास में रखने से व्यापार में लाभ, विजय और सुख प्राप्त होता है। सब कार्य सिद्ध होते हैं

२९—ऋद्धि तथा मन्त्र के द्वारा १०८ बार मंत्रित जल पिलाने से और यंत्र को पास रखने से दुखती हुई आँखें अच्छी हो जाती हैं, बिच्छू का विष उतर जाता है।

३०—मंत्र की आराधना करने तथा यन्त्र अपने पास रखने से शत्रु का स्तम्भन होता है, चोर तथा सिंहादि का भय नहीं रहता।

३१—यन्त्र अपने पास रखने तथा मन्त्र की जाप से राज्य में सम्मान होता है, दाद, खुजली आदि चर्मरोग नहीं होते।

३२—कुमारी कन्या के द्वारा काते हुए सूत को ऋद्धि मन्त्र द्वारा मंत्रित करके, उस सूत को गले में बांधने से और यन्त्र पास रखने से संग्रहणी आदि पेट के रोग दूर हो जाते हैं।

३३—कुमारी कन्या द्वारा काते हुए सूत को ऋद्धि मंत्र द्वारा २१ बार मंत्रित करके, उस सूत का गंडा गले में बाँधने से, झाड़ा देने तथा यंत्र पास में रखने से एकांतरा ज्वर, तिजारी, ताप आदि रोग दूर होते हैं। गुग्गुल मिश्रित घी की धूप खेना चाहिये।

३४—कसूम के रंग में रंगे हुए सूत को ऋद्धि मंत्र द्वारा १०८ बार मंत्रित करके तथा उसको गुग्गुल का धूप देकर बांधने से और यंत्र पास में रखने से गर्भ असमय में नहीं गिरता।

३५—ऋद्धि मन्त्र की आराधना करने यन्त्र पास रखने से दुर्भिक्ष, चोरी, मरी, मिरगी, राजभय आदि नष्ट होते हैं। इस मंत्र की आराधना स्थानक (!) में करनी चाहिये और यंत्र का पूजन करें।

३६—ऋद्धि मंत्र की आराधना से और यंत्र पास रखने से सम्पत्ति का लाभ होता है। विधान-१२०० जाप लाल पुष्प द्वारा करना चाहिए और यंत्र की पूजन भी साथ करना चाहिये।

३७—ऋद्धि मन्त्र द्वारा २१ वार पानी मंत्र कर मुँह पर छींटने से और यंत्र पास रखने से दुर्जन वश में हो जाता है उसकी जीभ का स्तम्भन होता है।

३८—ऋद्धि मंत्र जपने से और यत्र पास रखने से धन का लाभ और हाथी वश में होता है।

३९—ऋद्धि मंत्र जप और यंत्र पास रखने से सर्प और सिंह का रहता तथा भूला हुआ रास्ता मिल जाता है।

४०—ऋद्धि मंत्र द्वारा २१ वार पानी मंत्रकर घर के चारों और छींटने से और यंत्र पास रखने से अग्नि का भय मिटता है।

४१—ऋद्धि मन्त्र के जपने से और यंत्र के पास रखने से राजदरवार में सम्मान होता है और झाड़ा देने से सर्प का विष उतरता है। कांसे के कटोरे में जल १०८ वार मंत्रकर पानी पिलाने से विष उतर जाता है।

४२—ऋद्धि मंत्र की आराधना से और यंत्र के पास रखने से युद्ध का भय नहीं रहता।

४३—ऋद्धि मंत्र की आराधना और यंत्र पूजन से सब प्रकार का भय मिटता है। युद्ध में हथियार की चोट नहीं लगती तथा राजद्वारा धन-लाभ होता है।

४४— ाधना और यंत्र के पास रखने से आपत्ति मिटती है समुद्र में तूफान का भय नहीं होता। समुद्र पार कर लिया जाता है।

४५—ऋद्धि मंत्र जपने और यंत्र पास रखने तथा उसको प्रतिदिन त्रिकाल पूजा करने से सर्व रोग नष्ट होते हैं और उपसर्ग दूर होता है।

४६—ऋद्धि मंत्र जपने और यन्त्र पास रखने तथा उसकी त्रिकाल पूजा करने से कैद से छुटकारा होता है। राजा आदि का भय नहीं रहता है। दिन १०८ वार जाप करना चाहिए।

४७—ऋद्धिमंत्र को १०८ वार आराधना कर शत्रु पर चढ़ाई करने वाले को विजय लक्ष्मी प्राप्त होती है। शत्रु का नाश होता है, वैरी के शस्त्रों की धार व्यर्थ हो जाती है, बन्दूक की गोली, बरछी आदि के घाव नहीं हो पाते।

४८—प्रतिदिन १०८ बार २१ दिन तक मंत्र जपने से और यन्त्र पास रखने से मनोवांछित कार्य की सिद्धि होती है, जिसको अपने आधीन करना हो उसका नाम चिंतन करने से वह व्यक्ति अपने वश होता है।

मन्त्र-साधना

अपनी कार्य-सिद्धि के लिये जैसे अन्य उपाय किये जाते हैं उसी प्रकार मन्त्र आराधना भी एक उपाय है। मंत्रों द्वारा देव देवी अपने वश में किये जाते हैं, उन वशीभूत देवों के द्वारा अनेक कठिन कार्य करा लिये जाते हैं तथा मंत्रों द्वारा मानसिक वाचनिक शारीरिक शक्ति में वृद्धि भी की जा सकती है।

परन्तु इतनी बात निश्चित है कि जब मनुष्य के शुभकर्म का उदय होता है उसी दशा में यन्त्र, मंत्र, तंत्र सहायक या लाभदायक हो सकते हैं किन्तु, जब अशुभ कर्म का उदय होता है, उस समय यंत्र मंत्र तंत्र काम नहीं आते। रावण ने अचल ध्यान से बहुरूपिणी विद्या सिद्ध की थी किन्तु लक्ष्मण के साथ युद्ध करते समय अशुभ कर्म से कारण वह विद्या रावण के काम नहीं आई इसलिये सदाचार, दान, व्रतपालन, परोपकार

आदि शुभ कार्यों द्वारा शुभकर्म संचय करते रहना चाहिये। श्रेष्ठ बात तो यह है कि समस्त सांसारिक कार्य छोड़ कर, रागद्वेष की वासना से दूर होकर कर्मबन्धन से छुटकारा पाने के लिये शुद्ध आत्मा का ध्यान किया जावे, परन्तु यदि मनुष्य उस अवस्था तक न पहुँच सके तो उसे अशुभ ध्यान, अशुभ विचार, अशुभ कार्य छोड़कर शुभ ध्यान, शुभ कार्य, शुभविचार करना चाहिये। जहाँ तक हो सके अन्य व्यक्ति को दुख पीड़ा या हानि पहुँचाने के लिये मंत्र का प्रयोग नहीं करना चाहिये। स्व-परहित तथा लोक-कल्याण के लिये मन्त्रप्रयोग करना उचित हैं।

विधि

१—मंत्र साधन करने के लिये किसी मंत्रवादी विद्वान से मन्त्रसाधन करने की समस्त विधि जान लेना आवश्यक है। विना ठीक विधि जाने मन्त्र-साधन करने से कभी कभी बहुत हानि हो जाती है मस्तिष्क खराब हो जाता है, मनुष्य पागल हो जाते हैं।

२—मंत्र-साधन करने के दिनों में खान पान शुद्ध वा सात्त्विक होना चाहिये, जहाँ तक हो सके एक बार शुद्ध सादा आहार करे।
इन दिनों में ब्रह्मचर्य से रहकर पृथ्वी पर सोना चाहिये।

३—शुद्ध धुले हुये वस्त्र पहिन कर शुद्ध एकान्त स्थान में बैठना चाहिये, आसन शुद्ध होना चाहिये। सामने लकड़ी के पटे पर दीपक जलता रहना चाहिये और अग्नि में धूप डालते रहना चाहिये। विशेष मंत्र-साधन विधि में कुछ फेर-फार भी होता है।

४—यंत्र को सामने चौकी पर रखना चाहिये।

५—यंत्र तांवे के पत्र पर उकेरा हुआ हो, अथवा भोजपत्र पर अनार की लेखनी से केसर द्वारा लिखा हुआ हो।

६—मंत्र का उच्चारण शुद्ध होना चाहिये।

७—मंत्र जपते समय मन को इधर उधर नहीं भटकाना चाहिये।

८—शरीर में एक आसन से बैठे रहने की क्षमता होना चाहिये।

साधन-विधि

वशीकरण मंत्र सिद्ध करने के लिये वस्त्र धोती, दुपट्टा, बनयान पीले रंग की होनी चाहिये, बैठने का आसन और जपने की माला भी पीली होनी चाहिए।

धनलाभ—के लिये मंत्र-साधन में सफेद वस्त्र, सफेद आसन और सफेद मोती की माला होना चाहिए।

आकर्षण—मंत्र-साधन में हरे वस्त्र, हरी माला और हरा आसन होना चाहिए।

मोहन में—लाल वस्त्र, लाल आसन और मूंगे की माला होना चाहिए।

जिस मंत्र–साधन के लिए कोई दिशा न बतलाई गई हो उसका साधन पूर्व दिशा की ओर मुख करके करना चाहिए।

* ग्रन्थ समाप्तिः *

मुद्रक—सिघई प्रेस, जबलपुर M. P.